सचित्र, साहित्यक, सामाजिक, सांस्कृतिक पत्रिका

ॐ

वशिष्ट

वर्ष १ आषाढ़ २०२४ जून १९६७ अंक ६

मुख्य सम्पादक
कविराज किशोरचन्द्र
भारद्वाज

मुख्य प्रबन्धक
सोमनाथ तेजपाल
फोन : २६२६३३



वार्षिक शुल्क

विशेष ११ रु०

साधारण ५ रु०

कार्यालय :-
१०४-ए,
कमला नगर,
दिल्ली-७

सम्पादकीय

सदा की भांति इस वर्ष भी श्री परशुराम जयन्ती अ. भा. ब्रा. महासभा (रजि.) दिल्ली १०४ए कमला नगर के तत्वावधान में राजेन्द्र नगर श्री सलवान गर्ल्ज़ हा. सै. स्कूल के हाल में मनाई गई। वैसे तो पर्व वैशाख शुक्ला तृतिया १२-५-६७ को ही था और स्थानिय ब्रा. सभाओं ने महासभा के आदेशानुसार अपने-अपने क्षेत्रों में १२-५-६७ को ही जयंती मनाई, परन्तु महासभा ने वैधानिक उद्देश्य (जाति संगठन) हित केन्द्रिय स्थान राजेन्द्र नगर में १४-५-६७ रविवार को सायं ५ बजे से ७॥ बजे तक मनाई, जिसमें महासभा से सम्बन्धित प्रायः सभी क्षेत्रीय सभाओं के प्रतिनिधि आये हुए थे। उत्सव की अध्यक्षता श्रीमान् डा० भवानी शङ्कर जी भार्गवा एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट ने की थी।

किशोर चन्द्र भारद्वाज ने विद्वानों व उपस्थित बन्धुओं का स्वागत करते हुए अपने विचार बताये कि महासभा जयन्त्युत्सव समिति शिवबाड़ी ग्राम सराय कालेखां निकट निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन के प्रधान श्री वैद्य बृहस्पति देव त्रिगुणा तथा मन्त्री श्री नित्यानन्द दत्त के आभारी हैं जिनके उदार सहयोग से पुज्यपाद सर्वतंत्र स्वतंत्र महामहिम श्री १०८आचार्य अमृत वाग्भव जी महाराज प्रणीत श्री परशुराम स्तोत्र प्राप्त हुआ और साथ ही श्री एम. एस. पारखे जी पूना वाले के अनथक प्रयास से उपलब्ध श्री भार्गव कवच प्राप्त करने का सौभाग्य मिला।

श्री भारद्वाज ने श्री परशुराम स्तोत्र पढ़कर भी सुनाया जो वशिष्ठ के इस अंक में स्थानाभाव के कारण नहीं दे सके। आशा है कि आगामी अङ्क में प्रकाशित किया जावेगा।

महासभा को राजेन्द्र नगर ब्राह्मण सभा का पूर्ण सहयोग मिला और उत्सव की सफलता का श्रेय इस सभा के पदाधिकारियों व सम्पूर्ण सभासदों को है।

महासभा की तरफ से यदा-कदा आयोजित कार्य-क्रमों में श्री शिव दत्त जी सलवान से न केवल स्थान ही मिलता है अपितु स्थान का यथोचित प्रबन्ध भी पूर्ण रूप से मिलता है। केवल शब्दों से उनकी सराहना हो ही नहीं सकती। "परोपकाराम सतां विमुतयाः" सतपुरुषों का सर्वस्व परोपकार हित ही होता है। ॥इति॥

'भारद्वाज'

वेदामृत

श्री पं० अर्जुन देव जी शास्त्री स्वर्णपदक विजेता (शिक्षा)
२०/६०, पंजाबी बाग, दिल्ली।

विष्णोः कर्माणि पश्यत । यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।

(ऋगवेद १/२२/१९)

अन्वय- (हे मनुष्याः ! यूयम्) विष्णोः कर्माणि पश्यत । यतः व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।

अर्थः-हे लोगो ! तुम विष्णु के कार्यों को देखो, जिन कार्यों को देख कर मनुष्य अपने-अपने उत्तम कर्मों को पालने में समर्थ हो सकता है। वह विष्णु इन्द्र (आत्मा) योग्य मित्र है।

व्याख्या :-इस मन्त्र के चार खण्ड हैं— १. परमात्मा सर्व व्यापक है, उसे 'विष्णु' कहते हैं। २. वह विष्णु सृष्टि रचना तथा जीवों को यथावत् अपने पाप पुण्यों का फल देना आदि अनेकों कार्य करता है। ३. उसके अनेक पवित्र कर्मों को देख कर हम भी शुभ कर्म (व्रत) करें। ४. वह इन्द्र (आत्मा) का सर्वोत्तम मित्र है।

कई लोगों का विचार है कि परमात्मा सृष्टि की रचना तो करता है, परन्तु सृष्टि के अणु-अणु में निवास न करके अन्यत्र रहता है। उस रहने के स्थान को भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग हैवन, स्वर्ग, विष्णुधाम, गोलोक आदि मानते हैं, परन्तु ऐसा कहना वैदिक विचारों से विपरीत है, क्योंकि वह विष्णु है—"विवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः" अर्थात् जो जड़ चेतन जगत् में व्याप्त है, वह विष्णु—व्यापक प्रभु है।

"स ओतप्रोतश्च प्रभुः प्रजासु" अर्थात् परमात्मा उत्पन्न हुए जड़ चेतन पदार्थों में व्याप्त है।

वह सृष्टि की रचना करता है। यह सृष्टि रचना का कार्य प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चलता है। पृथ्वी का इस वर्तमान रूप में आना अन्तिम कार्य है। इसका आरम्भ अणु-अणु के संयोग से प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार सूर्यादि का निर्माण तथा पर्वत, ओषधियों का निर्माण भी उसी के कार्य हैं।

कई ब्रह्मवादी परमात्मा को कर्ता नहीं मानते। उनका कहना है कि कर्त्तव्य तो साधारण प्राणियों का कार्य है। महान् ईश्वर क्रियाहीन है। वह कर्म-बन्धन से रहित है। वह तो केवल द्रष्टा मात्र है। कर्ता, भोक्ता तो जीव है।

इस प्रकार के विचार इस मन्त्र के विपरीत हैं, क्योंकि मन्त्र से परमात्मा में कर्त्तव्य गुण माना गया है।

सनो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद, भुवनानि विश्वा ।

अर्थात्—वह परमात्मा हमारा बन्धु तथा तमाम भुवनों का कर्ता है। महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन में कहा है—"जन्माद्यस्य यतः।" अर्थात् परमात्मा संसार का उत्पादक, रक्षक तथा संहर्ता है. अतः भगवान् व्यास परमात्मा में कर्त्तव्य गुण मानते हैं। यदि विचार किया जाए तो परमात्मा में अकर्त्तव्य गुण मानना न केवल अवैदिक

वेदामृत

श्री पं० अर्जुन देव जी शास्त्री स्वर्णपदक विजेता (शिक्षा)
२०/६०, पंजाबी बाग, दिल्ली।

विष्णोः कर्माणि पश्यत। यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा।

(ऋगवेद १/२२/१९)

अन्वय- (हे मनुष्याः ! यूयम्) विष्णोः कर्माणि पश्यत। यतः व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा।

अर्थः-हे लोगो ! तुम विष्णु के कार्यों को देखो, जिन कार्यों को देख कर मनुष्य अपने-अपने उत्तम कर्मों को पालने में समर्थ हो सकता है। वह विष्णु इन्द्र (आत्मा) योग्य मित्र है।

व्याख्या :-इस मन्त्र के चार खण्ड हैं— १. परमात्मा सर्व व्यापक है, उसे 'विष्णु' कहते हैं। २. वह विष्णु सृष्टि रचना तथा जीवों को यथावत् अपने पाप पुण्यों का फल देना आदि अनेकों कार्य करता है। ३. उसके अनेक पवित्र कर्मों को देख कर हम भी शुभ कर्म (व्रत) करें। ४. वह इन्द्र (आत्मा) का सर्वोत्तम मित्र है।

कई लोगों का विचार है कि परमात्मा सृष्टि की रचना तो करता है, परन्तु सृष्टि के अणु-अणु में निवास न करके अन्यत्र रहता है। उस रहने के स्थान को भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग हैवन, स्वर्ग, विष्णुधाम, गोलोक आदि मानते हैं, परन्तु ऐसा कहना वैदिक विचारों से विपरीत है, क्योंकि वह विष्णु है—"विवेष्टि व्याप्रोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः" अर्थात् जो जड़ चेतन जगत् में व्याप्त है, वह विष्णु—व्यापक प्रभु है।

"स ओतप्रोतश्च प्रभुः प्रजासु" अर्थात् परमात्मा उत्पन्न हुए जड़ चेतन पदार्थों में व्याप्त है।

वह सृष्टि की रचना करता है। यह सृष्टि रचना का कार्य प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चलता है। पृथ्वी का इस वर्तमान रूप में आना अन्तिम कार्य है। इसका आरम्भ अणु-अणु के संयोग से प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार सूर्यादि का निर्माण तथा पर्वत, ओषधियों का निर्माण भी उसी के कार्य हैं।

कई ब्रह्मवादी परमात्मा को कर्ता नहीं मानते। उनका कहना है कि कर्त्तव्य तो साधारण प्राणियों का कार्य है। महान् ईश्वर क्रियाहीन है। वह कर्म-बन्धन से रहित है। वह तो केवल द्रष्टा मात्र है। कर्ता, भोक्ता तो जीव है।

इस प्रकार के विचार इस मन्त्र के विपरीत हैं, क्योंकि मन्त्र से परमात्मा में कर्त्तव्य गुण माना गया है।

सनो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद, भुवनानि विश्वा।

अर्थात्—वह परमात्मा हमारा बन्धु तथा तमाम भुवनों का कर्ता है। महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन में कहा है—"जन्माद्यस्य यतः।" अर्थात् परमात्मा संसार का उत्पादक, रक्षक तथा संहर्ता है. अतः भगवान् व्यास परमात्मा में कर्त्तव्य गुण मानते हैं। यदि विचार किया जाए तो परमात्मा में अकर्त्तव्य गुण मानना न केवल अवैदिक

है, प्रत्युत युक्ति संगत भी नहीं। चेतन और जड़ पदार्थ में यही अन्तर है कि जड़ पदार्थ क्रिया-शून्य है और चेतन क्रियाशील है। यदि परमात्मा क्रियाशील नहीं, तो वह जड़ होगा। यदि जड़ हो तो वह कर्ता नहीं माना जा सकता, अतः परमात्मा में कर्त्तव्य है और वह सृष्टि-निमार्ण आदि अनेकों कार्यों को करता है।

सुना जाता है कि जर्मन देश में एक महान् दार्शनिक एक्लिस था। वह ईश्वर को सृष्टि का कर्ता नहीं मानता था। उसकी धारणा थी कि सृष्टि का निर्माता कोई नहीं। ये सभी सूर्य. चन्द्र, तारे, भूमण्डल स्वतः बन गए।

उसका एक मित्र था, जो कि खगोल शास्त्र का महान् पण्डित था। उसने खगोल के समस्त सौरमण्डल का एक यन्त्र बनाया। चाबी लगाने से वह गतिमान् हो जाता और समस्त सौर मण्डल के वह गतिमान् हो जाता और समस्त सौर मण्डल के मध्य में स्थित सूर्य की परिग्रह, उपग्रह यन्त्र के मध्य में स्थित सूर्य की परिक्रमा अपनी-अपनी निश्चित गति से करने लग जाते।

वह आस्तिक था। वह परमात्मा को सृष्टि कर्ता मानता था। एक दिन उसका मित्र दार्शनिक उसे मिलने के लिए, उसकी प्रयोगशाला में आया। खगोल शास्त्री ने उस यन्त्र को चाबी लगा दी और वह पूर्ववत् चलने लगा। उसे देख कर दार्शनिक ने पूछा—मित्रवर! इस अद्भुत यन्त्र का किसने निर्माण किया है? खगोल शास्त्री ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—श्रीमन्! इसका बनाने वाला कोई नहीं। इधर उधर से लोहा स्वयं इकट्ठा हो गया और यन्त्र बन कर चलने लग गया है।

यह सुनकर दार्शनिक ने हंस कर कहा—श्रीमानजी! मुझ उल्लू बना रहे हो। भला इस प्रकार यन्त्र बिना बनाए कभी बन सकता है? इसमें तो सूक्ष्म से सूक्ष्म नियम काम कर रहे हैं। इसमें तो चेतन की बुद्धि का पूर्ण कार्य है। यह सुन कर खगोल शास्त्री ने हंसते हुए कहा—मित्रवर! यह सारा संसार भला यूंही बन गया? जिसमें अत्यन्त सूक्ष्म नियम कार्य कर रहे हैं।

दार्शनिक निरुत्तर हो कर बोला—मित्र महोदय! सचमुच इस संसार का कर्ता ईश्वर है, जो कि मेधावियों का भी मेधावी है। यह सृष्टि अकर्तक नहीं।

यदि प्रभु को संसार का कर्ता मान लिया जाए तो उसके कर्म तो महिमाशाली, पवित्र तथा परोपकार मय होंगे। जैसे कि सूर्य मण्डल, भूमण्डल, जल, वायु तथा आकाश आदि दिव्य शक्तियों का निर्माण जीवों के लिए कितना लाभदायक है। हमारे शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों की रचना हमारे लिये कितनी उपयोगी है। पेड़, पौधे, औषधियां, समुद्र आदि मानव के लिए कितने हितकर हैं। यह एक महान् यज्ञ है। जिसके द्वारा समस्त प्राणियों का उपकार होता है। परमात्मा के कार्य दयापूर्ण, उपकारपूर्ण, सहानुभूति पूर्ण, ज्ञानपूर्ण तथा सत्यपूर्ण एवं नियम पूर्ण हैं। प्रभु का एक-एक कार्य विद्या से युक्त तथा ज्ञान पूर्ण है अतः हमें इन कार्यों को आदर्श बना कर अपने पवित्र कार्यों को करना चाहिए। हमारे सभी कार्य जन-कल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत हों। इस प्रकार हम अपने चरित्र तथा आचार व्यवहार को पवित्र बना सकते हैं।

इस वेद मन्त्र के अन्तिम भाग में परमात्मा को जीवों का योग्यतम मित्र कहा है। यहां इन्द्र का अर्थ है आत्मा। तभी तो हमारे शरीर के ज्ञान और कर्म का सम्पादन करने वाले अंगों को 'इन्द्रिय' कहा गया है— "इन्द्रस्य आत्मन इदं करणम् इन्द्रियम्।" 'सखा' का अर्थ है 'समान

ख्याल' समान गुण वाला मित्र। परमात्मा के समान आत्मा भी सत् और चित् है। परमात्मा में केवल 'आनन्द' का तत्त्व अधिक है। वेद के अनेकों मन्त्रों में भगवान् को मित्र कहा गया है--

सख्ये त इन्द्र ! वाजिनो मा भमे शवसस्पते ! त्वामभि प्रणो नुमः। जेतारमपराजितम् ।।

अर्थात्--हे परम पिता इन्द्र! तुझ शक्तियों के भण्डार से मित्रता गांठ कर हम किसी से भी न डरें, क्योंकि तुम मेरे ऐसे मित्र हो जो जेता और कभी पराजित नहीं होने वाला। हम तुझ मित्र के आगे सिर झुकाते हैं।

अजमेर में परशुराम जयन्ती

अजमेर ! १२ मई ! आज भगवान श्री परशुराम जी महाराज की जयंती के उपलक्ष्य में स्थानीय लक्ष्मीनारायण जी के पुराने मंदिर में सभी बन्धु एकत्रित हुए। सर्व प्रथम श्री कन्हैया लाल जी शास्त्री ने शास्त्रोक्त विधि से पूजन कराया तथा परशुराम जी के जीवन पर उपस्थित व्यक्तियों में परस्पर चर्चा द्वारा ज्ञानोलाभ कराया। इस अवसर पर निम्नलिखित उपस्थित रहे।

श्री लादूराम जी बणसिया, श्रीधर शर्मा, माणक चन्द शर्मा, कैलाश चतुर्वेदी, गोविन्द लाल शर्मा, चिरंजी लाल रूंथला, बंशीलाल नवहाल, नयनारायण रूंथला एवं कन्हेया लाल नवहाल।

विनित

(चिरंजी लाल रूंथला)

पुराना मंदिर, पट्टीकटला, अजमेर।

मेरे वतन की खाक

'श्री रामानन्द जी दोषी'

सौ स्वर्ग का सिंगार है मेरे वतन की खाक

मेरे वतन की खाक, जैसे फूल का पराग.
ग्रामों के बौर-भौर में, कोयल का प्रीत राग ।
है द्वार-द्वार ग्रल्पना, हर देहरी चिराग,
कजरी किसी ने छेड़ दी, छेड़ा किसी ने फाग ।।
जैसे कि इक बहार है मेरे वतन की खाक ।
सौ स्वर्ग का सिंगार है मेरे वतन की खाक ।।

इस में बजाईं बांस की कान्हा ने पोरियाँ,
जौहर की ग्राग चूमती थीं इसकी गोरियाँ ।
सारे जहां को बांट दी हैं नेह-डोरियां,
इस ही ने तो सुनाई ग्रहिंसा की लोरियां ।।
माँ का मृदुल दुलार है मेरे वतन की खाक ।
सौ स्वर्ग का सिंगार है मेरे वतन की खाक ।।

धमकी जो दे रहे हैं हमें, उन से जा कहें,
ग्रच्छा है मेल-जोल से ग्रापस में हम रहें ।
सुख में सभी हों साथ सभी दुःख भी सहें,
सरिता हो प्रीत प्यार की जिसमें तरें, बहें ।।
करती यही पुकार है मेरे वतन की खाक ।
सौ स्वर्ग का सिंगार है मेरे वतन की खाक ।।

तलवार को कर लिजिए ग्रब ग्राप म्यान में,
रिशता है प्यार का ही भला दरमियान में ।
यूँ तो ना पीछे पाइएगा इमतिहान में,
गिरि-शृंग की उठान है हर एक जवान में ।।
छेड़ोगे तो ग्रंगार है मेरे वतन की खाक ।
सौ स्वर्ग का सिंगार है मेरे वतन की खाक ।।

श्री परशुराम जयंती

सराय कालेखां में

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय श्री १००८ महाराज आचार्य अमृतवाग्भव जी की असीम कृपा प्रेरणा से विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी देवदेवेश्वर भगवान परशुराम जयन्त्युत्सव दिनाँक १२ मई १९६७ को श्री त्रिगुणेश्वर महादेव मंदिर ग्राम सराय कालेखां, निकट निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन नई दिल्ली-१३ में सोत्साह परम-पूज्य प्रातः स्मरणीय श्री तिलपत वाले महाराज जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस समारोह में दिल्ली के सैंकड़ों ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य आदि सभी वर्णों और वर्गों के भगतों ने बड़ी धूमधाम और श्रद्धा से इस महान पुन्य में भाग लिया।

प्रातः पूजन आदि के बाद सायं काल श्री भगवान् परशुराम जी के जीवन और सिद्धान्तों पर कई विद्वानों ने प्रकाश डाला। कहा गया कि आज की आपतकालीन स्थिति में श्री परशुराम जी द्वारा बताये गए मार्ग पर चलने से देश का बड़ा कल्याण होगा। देश की स्वतन्त्रता और संस्कृति की विधर्मी आततताइयों व आक्रमणकारियों से रक्षा करने के लिए भगवात परशुराम जी के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। मातृ भूमि की रक्षा उन्हीं के बताये गये मार्ग "शास्त्र और शस्त्र" द्वारा होगी।

अखिल भारत वर्षीय ब्राह्मण महासभा (रजि०) दिल्ली १०४ ए, कमला नगर, दिल्ली-७ के मासिक पत्र "वशिष्ट" के मुख्य सम्पादक श्री कविराज किशोर चन्द भारद्वाज वैद्य शास्त्री, मुख्य प्रबन्धक श्री सोमनाथ तेजपाल और श्री दौलत राम गंगाहर प्रधान मन्त्री महासभा को धन्यवाद है। जिन्होंने बड़े ही सुन्दर लेख भगवान् श्री परशुराम के जीवन पर अपने मासिक पत्र में प्रकाशित किये हैं। आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि श्रद्धालु पाठक लाभन्वित हो कर हमें कृतार्थ करने की कृपा करेंगे।

निवेदक :–
श्री परशुराम जयन्त्युत्सव समिति दिल्ली
श्री त्रिगुणेश्वर महादेव मन्दिर, फोन : ६११२२१
ग्राम–सराय कालेखां निकट निजामुद्दीन
रेलवे स्टेशन नई दिल्ली-१३.

वैद्य बृहस्पति देव त्रिगुणा, प्रधान प्रबन्धक समिति : श्री नित्यानंद दत्त, मन्त्री

श्री मंगत राम जी वशिष्ट	श्री वी. डी. बख्शी	पं० राम स्वरूप शर्मा
श्री राज कुमार अग्रवाल	श्री तारा चन्द जी	पं० मनी राम भारद्वाज
श्री बाल किशन कोशिक	श्री इन्द्रजीत कौशल	पं० नन्द लाल कौशल
श्री भगवान दास जी	श्री रतन सिंह	पं० दुर्गा दास शर्मा
श्री गोपी नाथ जी	श्री रुद्रदेव पाण्डेय	श्री राजेन्द्र कुमार गोस्वामी

लेख—

जर्मन—संस्कृत का दूसरा घर

जर्मन न्यूज वीकली से अनुवादित, (अनुवादिक श्री सुरेन्द्र शर्मा)

संस्कृत विश्व परिषद, जो कि संस्कृत की पढ़ाई को पुनर्जीवित करती आ रही है, के आठवें अधिवेशन का उदघाटन बंगलौर में 27 मई, 1966 को भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन द्वारा किया गया था।

इस सम्बन्ध में भारत जर्मन सांस्कृतिक सम्बन्धों के एक भारतीय विद्यार्थी का कहना है कि भारत के प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद ने, जो कि अपनी मृत्यु तक इस परिषद के प्रधान थे, जर्मनी के विद्ववानों द्वारा की गई संस्कृत की सेवा को स्वीकार किया है।

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा, "हम खास तौर से जर्मन विद्वानों के आभारी हैं जिन्होंने भारतीय दर्शन तथा संस्कृत साहित्य का सूक्ष्मता से अनुसंधान किया।' और यह कार्य जर्मन विद्वानों द्वारा की गई भारतीय संस्कृति की "खोज" के साथ आरम्भ हुआ। प्रस्तुत लेख में जर्मन विद्वानों द्वारा संस्कृत पुस्तकों में निहित भारतीय विचार धारा में ली गई रुचि का संक्षिप्त वर्णन है।

इन विद्वानों की संख्या बहुत अधिक है जिनमें कुछ तो बहुत प्रसिद्ध हैं और कुछ नहीं हैं। इन विद्वानों की मडली में सब से पहले जीगेनबाल्ग (Zigenbalg) का नाम आता है। इनके अतिरिक्त बहुत से वर्तमान प्रोफैसर भा हैं। थोड़े से स्थान में उन सब के योगदान के बारे में लिखना बहुत कठिन है।

जर्मनी के प्रथम धर्म प्रचारकों ने जो सत्तरहवीं शताब्दी में भारत में अपने धर्म का प्रचार करने आये थे। भारतीय भाषाओं का और खासतौर पर संस्कृत का गहरा अध्ययन किया। उन्होंने उस समय की प्राकृत भाषाओं को अपनाया और फिर इन भाषाओं के शब्दकोष तथा व्याकरण तैयार किये। उन्होंने इन भाषाओं में ज्ञानपूर्ण पुस्तकें तथा कवितायें लिखीं, जिनको पढ़कर उस समय के विद्वान ब्राह्मण भी दंग रह गये। बावोरिया में डिलीनगर इलाके के एक विद्वान हेनरिच रोध (1610-1688) ने 30 वर्ष तक श्रीनगर, गढ़वाल, तथा आगरा में संस्कृत का काम किया। वह अपने वक्त को सर्वोत्तम सस्कृत की व्याख्या करने वाले माने गये। और वह पहला यूरोपियन था। जिसने सस्कृत का व्याकरण लिखा। जीगेनवाल्ग (1682-1719) ने दक्षिण भारत में रहकर तामिल का व्याकरण लिखा।

श्री कालीदास की 'शकुन्तला' का प्रथम बार जर्मन भाषा में अनुवाद जार्ज फार्सटर (1754-94) द्वारा किया गया जिसकी तारीफ गोयटे ने भी की थी।

आर्थर शोपेनहावर (1788-1360, भारतीय संस्कृति तथा तत्वज्ञान के बड़े प्रशंसक थे। वह उपनिषदों से बहुत प्रभावित हुए और उ... आलौकिक विचारों से युक्त बताया तथा उस शताब्दी की सर्वोत्तम भेंट माना।

अलेग्जेंडर हेमिल्टन ब्रिटिश नौसेना के अफसर थे जो 19वीं शताब्दी के आरम्भ में पेरिस में युद्ध बंदी बन्द कर रहे थे। 1802 में एक युवा जर्मन विद्यार्थी फ्रायडरिच सैकलेगल (1772-1829) उनसे प्रभावित होकर उनका शिष्य बन गया। उसने अपने भाई विल्हम को भी संस्कृत का व्यापक अध्ययन करने के लिये प्रेरित किया। वह 1818 में बान विश्व-विद्यालय में संस्कृत के पहले जर्मन प्रोफेसर बने। आगे चलकर जर्मनी के अधिकतर विश्वविद्यालयों में संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अन्य द्राविड़ भाषाओं को अलग-अलग विषयों के रूप में शुरू किया गया। जयदेव की "गीता गोविन्द" को जर्मन साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त हुआ। जर्मन में इसका अनुवाद रूकर्ट (1788-1866) में किया। उन्होंने कई भारतीय पुस्तकों का अनुवाद किया नल-दमयन्ती, अथर्व वेद आदि। जब विदेशी शक्तियाँ भारत को लूट रही थीं, जर्मन विद्वानों ने भारत के बौद्धिक भंडार को बनाये रखा। मैक्स मुलर (1823-1900) द्वारा भारतीयता के अनुसंधान के विषय में सबसे अधिक कार्य हुआ। इतना कार्य यूरोप में किसी ने नहीं किया। मैक्स मुलर एक सुविख्यात जर्मन कवि का बेटा था। उसी के नाम पर भारत में स्थापित जर्मन सांस्कृतिक संस्थाओं का नाम रखा गया है। वह देश में अपनी लिखी हुई, "सेकरड बुक्स आफ दी ईस्ट" (Sacred Books of the East) तथा ऋग्वेद संहिता के कारण प्रसिद्ध है। ऋग्वेद संहिता का पहला प्रकाशन अभी हाल ही में बनारस के प्रकाशक ने जर्मन सरकार की सहायता से किया है। मैक्स मुलर द्वारा शुरू की गई प्रथा को कई विद्वानों ने बनाये रखा और भारतीय संस्कृत साहित्य की अनेक रचनायें जर्मनी में प्रकाशित की गईं हैं।

महायुद्ध के बाद जर्मनी में भारत विषयक अध्ययन में भारी परिवर्तन हुआ है और उसका प्रमुख कारण भारत का स्वतंत्र होना है। भारत के परतंत्र होने के कारण बौद्धिक सम्बन्धों में एक गतिरोध पैदा हो गया है परन्तु अब वे सम्बन्ध दिन प्रतिदिन दृढ़ होते जायेंगे। ऐसी बात नहीं कि युद्ध से पहले जर्मनी में भारत के बारे में कोई रुचि नहीं लेता था बल्कि स्वतत्र भारत में शिक्षा तथा अनुसंधान के क्षेत्र में नई संभावनाओं के उत्पन्न हो जाने से यह रुचि अत्याधिक बढ़ गई है।" यह शब्द डाक्टर बिलफ्रेड नोयले ने अपनी पुस्तक "जर्मनी—वेदों का दूसरा घर" में लिखे हैं। डा० नोयले कई वर्षों से जर्मन एम्बैसी के बड़े आफीसर रहे।

डा० नोयले ने आगे लिखा है, "भारतीय संस्कृति की महान सफलताओं तथा भारतीय संस्कृति का पूरी मानव जाति के प्रति योगदान का रहस्य भारत की प्राचीनता में है। उस प्राचीनता के समझने के लिये संस्कृत भाषा का ज्ञान आवश्यक है। यह मानना पड़ेगा कि जितना भारतीय तत्वज्ञान के अध्ययन में संस्कृत का महत्व है उतना ग्रीक या लेटिन भाषा का यूरोपियन तत्वज्ञान में नही है। इस लिये यह मानना चाहिए कि भारतीय संस्कृति को गम्भीर रूप से समझना तब तक संभव नहीं है जब तक संस्कृत का ज्ञान न हो।"

जर्मनी की लगभग प्रत्येक लायब्रेरी में भारत पर लिखी पुस्तकों का विशेष भंडार अवश्य होगा। भारतीयता पर कई पत्रिकायें जर्मनी में प्रकाशित की जाती हैं और कई ऐसी संस्थायें भी हैं जो भारतीय तथा जर्मन जनता के सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भाग लेती है।

जर्मनी के विश्वविद्यालयों में भारत सम्बन्धी अध्ययन के इस समय बारह उच्च पद हैं। कई विश्वविद्यालयों में संस्कृत के साथ-साथ प्राचीन भाषा विज्ञान भी पढ़ाया जाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि आधुनिक भाषाओं की वहां अवहेलना की जाती है। संस्कृत के प्रत्येक विभाग में एक या दो भारतीय प्रोफेसर हैं जो आधुनिक भाषा पढ़ाते हैं। हाल में स्थापित साऊथ एशियन स्टडीज की संस्था में आधुनिक भारतीय प्राकृत भाषाओं का पढ़ाने का खास प्रबन्ध है। यह संस्था विद्यार्थियों को भारत में प्रान्तीय भाषाओं के अनुसन्धान के लिये भेजने का विचार कर रही है।

भगवान परशुराम

श्री पं० भवानी शंकर एम० ए० पी० एच० डी०, एल० एल० बी० एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट ५, दरयागंज, दिल्ली-६

पितृ भक्तों में भगवान परशुराम का सर्वोच्च आदर्श स्थान है। भगवान परशुराम के अवतार के लिए यदि यह कहा जाये 'न भूतोन भविष्यति' न ऐसा अवतार पहले हुआ न आगे होने की आशा है। तो उपयुक्त ही होगा। ये जमदग्नि ऋषी एवं राजा प्रसेनजित की पुत्री रेणुका के पाँचवें पुत्र थे। शुरू से ही ये बड़े कुशाग्रबुद्धि, योद्धा, निडर तथा आज्ञाकारी थे। समस्त वेद शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे। समस्त युद्ध विद्या में निपुण भगवान भोलेनाथ से युद्ध में अजेय होने का वरदान प्राप्त थे। भगवान शंकर ने स्वयं अपना परसा इन्हें दे वरदान दिया—"इससे तुम युद्ध में विजय प्राप्त करोगे," उसी से ये परशुराम कहलाते थे। ये 'भृगु संहिता वाले' महर्षि भृगु के वंशज थे। महर्षि **च्यवन** 'च्यवन प्राश वाले' इनके परदादा थे। इनके दादा का नाम महर्षि **रच्यक** था। यद्यपि भार्गव की माता रेणुका बड़ी धर्मशीला पतिव्रता थीं, त [illegible] समय ऐसा घटित हुआ कि एक बार स्नान करके लौटते समय उन्होंने जलक्रीड़ा करते हुए राजा चित्ररथ को देख लिया, विहारत राजा को देखते ही उन्हें क्षण भर को क्षोभ हुआ जिस मानसिक पाप को उनके पति जमदग्नि ऋषी ने अपनी सिद्धि द्वारा जानकर उन्हें धिक्कारा और क्रमशः अपने पाँचों पुत्रों - रुक्मवान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और भगवान परशुराम को अपनी माता को मार डालने का आदेश दिया। प्रथम चारों पुत्र आदेश नहीं मान सके और सहमे हुए से खड़े रह गये और ऋषी के शाप से विचार शक्ति से शून्य हो पशु-पक्षियों के जड़ बुद्धि हो गये। लेकिन भगवान परशुराम ने तुरन्त पिता आज्ञा का शिरोधार्य कर अपने परशु से माता का मस्तक उतार लिया। रेणुका के मरते ही महर्षि का क्रोध शान्त हो गया और बोले—'बेटा ! तूने मेरी बात मान कर वह काम किया है, जिसे करना बहुत कठिन है, इसलिये तू अपनी मनमानी सब चीजें माँग ले।' कुशल बुद्धि भगवान परशुराम ने मांगा—"पिता जी ! मेरी माता जीवित हो जायें और उन्हें मेरे द्वारा मारे जा[illegible] बात याद न रहे। उनके मानस पाप का सर्वथा नाश हो जाय। मेरे चारों भाई पूर्ववत् स्वस्थ और बुद्धिमान हो जायें। युद्ध में मेरा सामना करने वाला कोई न हो और मैं दीर्घायु प्राप्त करूं।" पिता की आज्ञा पालन कर भार्गव ने अपने भाइयों को बचाया, माता के कलंक का प्राक्षलन किया और स्वयं अजेय एवं अमर हो गया। साथ ही साथ माता[illegible] जन्म जन्मांतर में होने वाले त्रितापों से मुक्त कर दिया। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण आदि भा[illegible] के शिष्य थे। भार्गव आज भी सप्तचिरंजीवियों-अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम में हैं।

भार्गव उस महर्षि जमदग्नि वंश से थे जिसके पास कामधेनु गौ थी। आततताई एवं अन्याइयों के तो जानी दुश्मन थे। सहस्रबाहु अर्जुन अपने युग का बड़ा प्रतापी राजा हुआ है जिसने महऋषी दत्तात्रय को प्रसन्न कर यह वरदान प्राप्त कर रखा था कि वह जब लड़ने जावे तो १००० भुजाओं का बल उसमें आ जावे। एक बार शिकार खेलते रास्ता

भटक कर महाराज सहस्रबाहु महर्षि जमदग्नि के आश्रम में चले आये। महर्षि ने अतिथि की सेनासहत बड़ी आवभगत की, जैसी कि राजा स्वयं राजमहलों में भी नहीं कर सकता था। राजा के पूछने पर महर्षि ने बतला दिया कि यह सब कामधेनु का प्रसाद है। आततताई राजा का कामधेनु पर मन ललचा गया और वह जबरन कामधेनु छीन आश्रम की शांति भंग कर अपनी राजधानी लौट आया। जब भगवान परशुराम को इस अन्याय का पता चला तो उन्होंने सहज ही में सहस्रार्जुन को मारा और कामधेनु को वापस पिता के आश्रम पर ले आए। मौका पाकर भार्गव की अनुपस्थिति में सहस्रार्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि ऋषी का सिर धड़ से अलग कर दिया और भार्गव की माता रेणुका छाती पीटती ही रह गई। भार्गव माँ का रुदन व छाती पीटन न सह सका, उसने तुरन्त संकल्प किया कि आततताई राजाओं को वह पृथ्वी पर से लोप करेगा। माँ के २१ बार छाती पीटने से इस पृथ्वी को २१ बार आततताई राजाओं से हीन किया। बहुत से आततताई क्षत्रिय राजा भगवान परशुराम के सामने नहीं आते थे। कई एक ने अपने बचाव के लिए जाति बदलना स्वीकार कर लिया था। कई एक स्त्री वेश में अपने को छुपाकर अपनी रक्षा कर रहे थे। एक बार कंस का जब भगवान परशुराम से साक्षात्कार हो गया तो डर कर कंस ने अपने आपको राक्षस बताकर पीछा छुड़ाया।

भगवान परशुराम जहाँ इतने बहादुर थे कि २१ बार दुष्ट क्षत्रिय राजाओं के वध से पृथ्वी को शुद्ध कर सकते थे उतने ही पूर्ण त्यागी थे। उन्होंने राजपद तथा पृथ्वी का उपभोग करना कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने समस्त पृथ्वी महर्षि कश्यप को दान में दे दी यहां तक कि इस पृथ्वी पर अपना आश्रम भी नहीं रखा। वे उत्कृष्ट त्यागी थे वे क्षत्रीमात्र के द्रोही एवं घातक नहीं थे। धर्म पर चलने वाले क्षत्रिय राजाओं से ये सदा प्रसन्न रहते थे और ऐसे राजाओं पर कभी क्रोध नहीं किया।

तुलसीकृत, वाल्मीकि एवं आध्यात्म रामायण में भगवान परशुराम की असीम शक्ति का वर्णन आया है। सीता स्वयंबर में शिव धनुष भंग होने पर लक्ष्मण परशुराम संवाद रोंगटे खड़े कर देता है। परशुराम ने लक्ष्मण का वध कर देने की धमकी दी थी और उनके लिए यह कुछ भी कठिन नहीं था। लेकिन उन्हें यह भी याद था कि उन्होंने ही स्वयं राम व लक्ष्मण को अमोध आशीर्वाद दिया हुआ है।

"अभय होउ अरि ते सदा, समर न जीतै को या
चिरंजीव युग युग जियहु कीर्ति लताबर होय।"

यदि ये हृदय से समस्त क्षत्रियों के द्रोही होते तो भगवान श्रीराम और लक्ष्मण को अमोध आशीर्वाद क्यों देते।

इस समय हमारे देश को बचाने के लिए यह परम आवश्यक हो गया है कि हम सब भगवान परशुराम के पद चिन्हों पर चल पड़ें। इस समय भगवान परशुराम जैसे अवतार की बड़ी आवश्यकता है। हमें अन्याय एवं भ्रष्टाचार कदापि नहीं सहना हैं। हमें भगवान परशुराम के जीवन से चेतना लेनी चाहिए। भगवान परशुराम से प्रार्थना करेंगे कि वे हम सब के हृदयों में प्रवेश हों इस विश्व में होने वाले अन्याय और विनाश का नाश कर न्याय की स्थापना करें तथा हम सब का कल्याण करें। हे भृगुगोत्रोत्पन्न श्रीराम जी! भक्तों के संरक्षक! आपके चरण कमलों के पास हम आये हैं, अपनी दया से भरी सुन्दर दृष्टि से हमारे ऊपर अनुग्रह करके दुष्ट और दुष्टों की अनीति को नाश करने वाली अपनी शक्ति हमें प्रदान करें।"

———

कहानी —

टेक की रक्षा

श्रीमति कमला चौधरी

दिन प्रति दिन के बढ़ते हुए जीवन के हा-हाकार से ब्राह्मणी की सहन-शक्ति परास्त हो गई। शीत की तीव्र प्रचण्डता और क्षुदा की दहकती ज्वाला से अपने बालकों को भस्मीभूत होते देख माता का हृदय विदीर्ण होने लगा। अपनी जीर्ण-शीर्ण फूस की झोंपड़ी में उसे शीघ्र ही प्रलय का दृश्य उपस्थित होने का आभास मिलने लगा।

दुधमुँहे गोद के बालक के लिए पेय पदार्थ का सर्वथा अभाव है। अपने सूखे स्तन पिला-पिला कर भले ही बालक के रुदन को भुलावा दे ले, पर उस के प्राणों को कब तक भुलावे में रख सकेंगी।

अन्य चारों बालक-बालिकाओं को भी कब से अन्न के दर्शन नहीं हुए। शरीर पर शीत से रक्षा के लिए वस्त्र तो क्या, लाज ढकने का भी साधन नहीं है। स्वयं उसके शरीर पर लज्जा की रक्षा करने योग्य साबित धोती नहीं है। कितने ही दिनों से एक फटी धोती, मल-[illegible] धोती में वह सिकुड़ी सिकुड़ाई झोपड़ी के भीतर ही अपने को छिपाकर लाज बचा रही है।

सरयू नदी की स्वच्छ, सलिल-धारा समीप ही बह रही है किन्तु लज्जा के कारण वह जल भरकर नहीं ला पाती। उस के अबोध बालक-बालिकाएँ मिट्टी के पुराने, मैले घड़े को लेकर शीत-पाले से ठिठुरते जल भरने जाते हैं। यह दृश्य किसी प्रकार ब्राह्मणी से देखा नहीं जाता है। वह बालकों को जल भर कर लाने को भेज देती है और फिर हृदय की वेदना से तड़पती हुई पृथ्वी में आँखें गड़ाए बैठी रह जाती है।

रात्री ने पृथ्वी को हिम-कण उपहार दिए हैं और हेमन्त ऋतु के प्रातः को अपना पूर्ण रूप दिखाने का अवसर मिला है।

आज मातृ-वात्सल्य सम्पन्न ब्राह्मणी की ममता की आँखें नीची कर लेने मात्र से छुटकारा नहीं मिल सका। दीनता देवी का नगन नृत्य देखने चिन्ता देवी भी जा उपस्थित हुई और स्वयं भी कदाचित अपनी सहचरी दीनता की सहायता हेतु प्रहार कर बैठी। जिस दृश्य को देखने से ब्राह्मणी के हृदय के टुकड़े से होने लगते हैं, पीड़ा हृदय को नोचने लगती है, उसी दृश्य को देखने के लिए वह विवश हो गई। शीत, ताप, लज्जा, दीनता सब की बात भूल कर वह चिन्ता में डूब गई। आकाश ने सहसा उस में तड़ित्-गति उत्पन्न कर दी। वह एक बारगी उठ कर खड़ी हो गई। भय से हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। काँपते शरीर, भयभीत मन और आकुल नेत्रों से वह झोंपड़ी के सरकण्डे किंचित हटा कर सरयू की जल-धारा की ओर जात हुए अपने बच्चों को आँखें विस्फारित करके ताकने लगी।

दोनों बालिकाएँ जिन की वयस अभी सात और नौ वर्ष ही की है, काही से ढके घड़े हाथ और कमर के सहारे बलपूर्वक दबाये, शीत से काँपती चली जा रही हैं। उनके शरीर के ऊपरी भाग में कपड़े का एक बालिश्त भर टुकड़ा भी नहीं है। कमर में अवश्य पुरानी मैली फरिया-सी बंधी है। उसमें भी बीसियों खोंपें लटक रही हैं, जिनकी मुरम्मत होना भी असंभव है। उनके पीछे पीछे चल रहे हैं दोनों छोटे-छोटे बालक, जिनके समस्त शरीर पर वस्त्र के नाम को एक चीथड़ा भी नहीं है, कटी पर मैले

काले धागों की करधनी-मात्र बंधी है। वह दोनों राह में पड़ी वृक्षों की पतली-पतली सूखी टहनियाँ उठा-उठा कर अपने नन्हें-नन्हें हाथों में एकत्रित कर रहे हैं। झोंपड़ी में वापस आकर वे माता के सम्मुख मानो बहुत बड़ी निधि रख कर कहेंगे—"ले माँ! आग जला दे, हम तापेंगे।" इसी विचार से बेचारे अबोध बालक सन्तुष्ट मन से लकड़ियाँ बीनने में दत्तचित्त हैं। उन लोगों के कोमल पैर हिम सदृश ठण्डी ओस के भीगे रेणु कणों पर चलने के कारण फूल कर नीले पड़ गये हैं। उस पर मलय समीर के झकोरे उनके नंगे पैर पर डंक से मार उठते हैं। शीतलता से ओत-प्रोत वायु का वह प्रबल प्रकोप सहन करने के लिये असहाय बाल दोनों कन्धे सिकोड़ कर ठिठुर कर किंचित ठहर जाते हैं और फिर चलने लगते है। मानो ब्राह्मणी के वह निरीह बालक बड़े पराक्रमी हैं, शूरवीर हैं, विजेता हैं, जिनसे युद्ध करने के लिए प्रकृति देवी विकट अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर उपस्थित है। दूसरी ओर सील की दुर्गन्ध से भरी फूस की झोंपड़ी के भीतर वह अपनी अनेक शक्तियों को भेजकर बच्चों की दुखिया माता को परास्त करने को आतुर है। उन शक्तियों में मानो सघर्ष प्रारम्भ है। दीनता के जिस मर्मान्तिक दृश्य को माता आँखें बन्द करके भुलाने की चेष्टा कर रही थी, उसी दृश्य को चिन्ता के प्रहार ने उसे देखने को विवश कर दिया है। चिन्ता के आघात से छटपटाता हुई, वह उस दृश्य की भयकरता को आँखें फाड़-फाड़ कर देख ही नहीं रही है, बल्कि आँखों की राह उस दृश्य के वीभत्स रस को पी रही।

चिन्ता ने अपने अंकुश की नोक ब्राह्मणी के मस्तक में चुभा कर कहा, "बच्चे सरयू की वेगवती धारा से जल भरने जा रहे हैं। शीत के कारण उनकी शारीरिक शक्ति हिम के समान जल गई है। हाथ-पैर निशचेष्ट हो गये हैं। कहीं घड़े उनके हाथ से छूट न जाएँ और घड़ों को संभालने की चेष्टा में बालिकायें बह न जायें।"

इस कल्पना से विकल होकर ब्राह्मणी इस समय सब कुछ भूलकर उसी चिन्ता में निमग्न है। उसके हृदय पर, सम्पूर्ण शरीर पर और आत्मा पर इस समय उसी आशंका का आतंक छा गया है। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भय के समावेश से झंकृत हो उठी हैं। मातृ-हृदय वेदना से अत्यन्त मर्माहत हो उठा है। किन्तु लज्जा देवी अपनी मर्यादा की रक्षा हेतु उसे पूणतः डोलने नहीं दे रही है। वह केवल घबराई हुई धक-धक करता हृदय लिए असहाय खड़ी दम भर रही है। उपाय रहित होने के कारण असहायता, दीनता और करुणा की साक्षात प्रतिमा सी वह खड़ी है।

इस लज्जा पर भी उसे इस समय ग्लानि सी हो रही है। मन कहता है कि इस की उपेक्षा कर के वह बाहर भाग कर अपने बच्चों को लौटा कर स्वयं जल भर लाये। किन्तु साहस नहीं होता। फिर भी आशंका विकल किये जा रही है। विधाता न करे यदि उसकी कल्पना सत्य के रूप में परिणत हो गई, तो वह क्या करेगी? अवश्य ही लज्जा की उपेक्षा करके झोंपड़ी से भाग खड़ी होगी।

ब्राह्मणी ने इस आशंका को भुलाने के उपक्रम में एक दीघ निःश्वास छोड़ कर आँखें बन्द कर लीं, दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगा लिये और प्रार्थना की "भगवान! मेरे बच्चों की रक्षा करो।"

"आँखें खोल कर ब्राह्मणी ने देखा बालक-बालिकायें निर्बिघ्न यात्रा समाप्त कर झोंपड़ी की ओर लौट रहे हैं। हास्य का हल्की रेखा अधरों पर स्फुटित हुई, किन्तु तुरन्त ही विलीन हो गई। हृदय में सन्तोष का हल्का झोंका आया किन्तु झोंका मात्र था, शीघ्र ही अपना प्रभाव लेकर उड़ गया। बालक जल में गिरने से बच गये हैं और झोंपड़ी की ओर सुरक्षित लौटे आ रहे हैं, यह विचार उस वातावरण में ब्राह्मणी के लिए सन्तोष का साधन था, किन्तु चिन्ता ने फिर हल्का सा प्रहार कर दिया आशंका से ब्राह्मणी का हृदय बैठने सा लगा—"कहीं मिट्टी के घड़े बालिकाओं के हाथ से गिरकर

फूट न जायें।"

उसकी उस दयनीय अवस्था में तो वे घड़े स्वर्ण कलश से भी अधिक मूल्यवान हैं। उसके लिए उन घड़ों को फिर प्राप्त कर लेना फिलहाल दुर्लभ ही नहीं असम्भव है। कितने दिन हुए जब वह अपनी एक परिचित कुम्हारी को झरबेरी के खट्टे बेर देकर बदले में दो घड़े मांग लाई थी। अब तो वस्त्र के अभाव में लज्जावश वहाँ तक जाना भी सम्भव नहीं है। इस चिन्ता ने ब्राह्मणी को बहुत ही उद्विग्न कर दिया। इस समय उसकी दृष्टि में बालिकाओं के परिश्रम के कष्ट से भी अधिक घड़ों की रक्षा महत्वपूर्ण बन गई थी। यदि इस समय कोई भी बालिका घड़ा लिये गिर पड़े और घड़ा फूट जाए, तो माता को बालिका के गिरने से अधिक दुःख घड़ा फूटने का होगा। जिस बालिका के जल मगन हो जाने की चिंता में क्षण भर पहले वह पीड़ा से तिलमिला कर विचलित हो उठी थी, उसी को इस समय वह घड़ा फोड़ डालने के डण्ड स्वरूप क्रुध होकर एक थप्पड़ अवश्य मार बैठेगी।

जब बालक-बालिकायें निर्विघ्न यात्रा समाप्त करके झोंपड़ी के द्वार पर आ गये, तो लपक कर ब्राह्मणी ने घड़े उन के हाथ से लेकर यथास्थान ठीक तरह रख दिये और एक दीर्घ निःश्वास लिया। किन्तु वह निःश्वास भी पूर्णतः सन्तोष का निःश्वास नहीं था। सुरक्षित जल से भरे घड़े पाकर भी विषाद उसके नेत्रों से दो अश्रु-कण में टपक गया जिसे बच्चों से छिपा कर फटी धोती के अचल से पोंछ कर ब्राह्मणी ने उसका चिन्ह मिटा दिया।

चिन्ता का अन्तिम प्रहार, और तज्जनित विषाद ब्राह्मणी के लिए बहुत ही तीखा हो उठा। फिर अनेक चिन्ताओं ने उसे घेर लिया।

बालकों को पिता के आने पर भोजन देने का ढाढ़स बंधाती हुई ब्राह्मणी आज अपनी दशा पर बहुत दुःखी होती हुई मन ही मन घटती सी जीविका उपार्जन के साधन सोचने में निमग्न हो गई। कोई उपाय, कोई युक्ति न सूझ सकने के कारण उत्तेजित सी होकर उसने निश्चय किया कि पति के आने पर आज वह उससे कोई उपाय निकाल कर अन्न-वस्त्र प्राप्त करने को कहेगी। कोई उपाय तो निकालना ही होगा! इस प्रकार जंगली फल-मूलों से कब तक निर्वाह हो सकता है? और वह भी तो पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होता। आये दिन उपवास करना पड़ता है। इस प्रकार तो निर्बल हो होकर धीरे-धीरे सभी का प्राणान्त हो जायगा। भले ही लज्जा और मर्यादा को तिलांजलि देना पड़े। माता अपनी आँखों के सम्मुख सन्तति को क्षुधाग्नि से झुलस-झुलस कर मरते कैसे देख सकेगी?

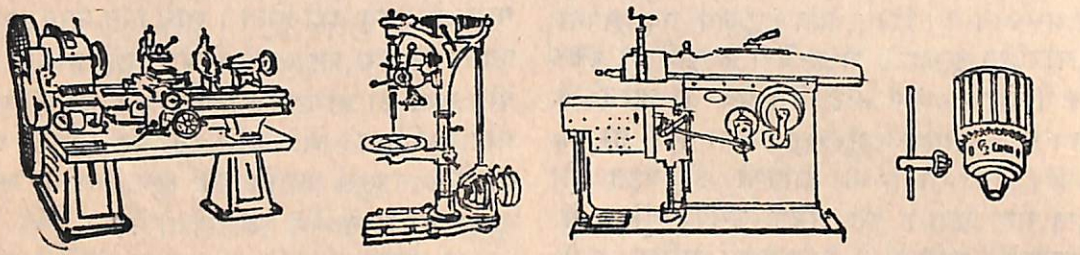
इस समय उसे यदि एक साबत धोती प्राप्त हो जाय तो वह कपास एकत्रित करके किसी से चरखा माँग कर सूत कात ले और जनेऊ बनाकर पति को बेच आने के लिए दे दे, धर्म की मर्यादा के पालन हेतु, अब तक उसने किसी की चाकरी और सेवा नहीं की है, किन्तु अब बच्चों की प्राण रक्षा हेतु विवश होकर वह भी स्वीकार करेगी। दूसरों का अन्न कूटेगी, पीसेगी, किन्तु यह सब हो कैसे? इस समय तो घर से बाहर पैर रखने का साधन भी नहीं जुट रहा है।

चिन्तातुर होकर ब्राह्मणी बच्चों की ओर से मुख फेर कर फफक-फफक कर रोने लगी। बच्चे आग तापते हुए पिता के आने की बाट जोह रहे थे।

सहसा ब्राह्मणी के कानों में भारी कोलाहल का आभास पाया। हृदय में कोतूहल लिये, कारण जानने के लिये, उसने फिर सरकण्डों और फूस के बीच के छिद्र से बाहर दृष्टि डाली। देखा राज प्रसाद के समीप वाले तट पर मनुष्यों की भारी भीड़ एकत्रित है। उन्हीं के कण्ठ-स्वर कोलाहल उत्पन्न कर रहे हैं।

सरयू तट की सूखी रेणुका पर भाँति-भाँति की सामग्रियाँ बहुत बड़े परिमाण में एकत्रित की गई हैं। सभी प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ वहाँ लाई जा रही हैं। अन्न-वस्त्र, धन-धान्य, स्वर्ण-चांदी, हीरे-जवाहरात तथा बहुमूल्य आभूषणों के वहाँ ढेर लगे हैं।

(क्रमशः)



हमें क्या करना चाहिए

श्री रविन्द्र जी

जीवन एक सतत प्रगति का नाम है। गर्भावस्था से ही प्रगति का आरम्भ हो जाता है और जब प्रगति बन्द हो जाती है तो मनुष्य एक जिन्दा लाश बन जाता है। जो बात व्यक्ति के लिए ठीक है वह बात समूह के लिए, देश के लिए और सारी मानवता के लिए भी ठीक है। भारत का इतिहास दिखाता है कि जब हमने प्रगति करना बन्द कर दिया, जब झूठे आत्म-संतोष को ले बैठे अथवा जब हमने आगे बढ़ना छोड़कर आपस में कलह करना शुरू कर दिया तो बाहर से शक्तियाँ आयीं फिर चाहे वे हूण हों या अरब, मुगल हों या अँग्रेज उन्होंने हमें ठोकरें लगायीं; पद-दलित किया और हर बार ठोकरें खाने के साथ ही हमारे अन्दर नव-चेतना ने जन्म लिया और हमें आगे बढ़ना सिखाया। कबीर, सूर, तुलसी, तुकाराम, नरसी, नानक रामदास, रामतीर्थ, दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इन सब मनीषियों ने देश और जाति को अपने-अपने समय के अनुकूल प्रगति का मार्ग दिखलाया और उसे मरणोन्मुख होने से बचाया।

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं जहाँ से।
बरसों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।।

आज मानवता एक नये मोड़ पर खड़ी हुई है। उसे अपने नये मार्ग का चुनाव करना है। चुनाव कठिन है। सत्य के पर्वत पर आरोहण करना होगा। चढ़ाई आसान नहीं है। अपने पुराने असबाब को पीठ पर लादे हुए इस कड़ी चढ़ाई पर आगे बढ़ सकना सरल न होगा। मानवता ने अभी तक जो कुछ प्राप्त किया है वह अपने आप में काफी महत्वपूर्ण है। समय, योग्यता और साधनों की दृष्टि से देखें तो उनमें से प्रत्येक का अपने स्थान पर बड़ा महत्व रहा है। पहले पहल जिसने आग सुलगायी होगी या जिसने पहिये का आविष्कार किया होगा वह अपने समय में आइस्टाइन, मार्कोनी या राइट भाइयों से कम महान न रहा होगा। परन्तु उनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए भी हमें उन्हीं के मोह में नहीं फँसे रहना है। अगर हम उनके प्रति सच्चे हैं तो हमें आगे राह बनानी होगी और आगे के मार्ग को आलोकित करने के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा कर देना होगा।

जो बात विज्ञान के बारे में ठीक है वही समाज व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था आदि के बारे में भी कही जा सकती है। भिन्न-भिन्न देशों में अपनी परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न परीक्षण हुए हैं हम उनसे चिपटे रहेंगे तो विनष्ट हो जायेंगे।

हमें स्वीकार करना चाहिये कि इस क्षारीय जल ने हमारे पूर्वजों को पाला-पोसा है। और हमें भी यहाँ तक पहुँचाया है परन्तु इसके मोह में पड़ कर हमें अमृत-संधान के कार्य की अवहेलना न करनी चाहिये।

आज मानवता अपने आपको नष्ट करने की पूरी तैयारी कर रही है। चारों ओर विनाश के बादल मँडरा रहे हैं। मनु ने कहा है कि सारे संसार के लोग अपना चरित्र परिपक्व करने के लिए अपने-अपने मार्ग की ठीक शिक्षा प्राप्त करने के लिए

भारत में आते हैं। आज भी भारत से पथ-प्रदर्शन की आशा की जा रही है।

विपदाएँ हैं बहुत मगर फिर भी यह बात सही है।
दुनिया तेरी ओर बड़ी आशा से ताक रही है।।

ऐसे अवसर पर हमारे कानों में श्री अरविन्द की वाणी गूँज जाती है। वे कहते हैं -

अब हमें कोनसी नयी वस्तु प्राप्त करनी है ? 'प्रेम', क्योंकि अभी तक तो हमने केवल द्वेष और अहं वासना ही प्राप्त की है। ज्ञान, क्योंकि अभी तक तो हमें केवल स्खलन, अवलोकन और विचार-शक्ति की ही प्राप्ति हुई हैं। आनन्द, क्योंकि हम अभी तक सुख-दुःख और उदासीनता ही प्राप्त कर पाये हैं। शक्ति, क्योंकि अभी तक तो निर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय ही हमारे पल्ले पड़ी है। जीवन, अभी हमने जन्म, वृद्धि और मरण ही तो पाया है और हमें प्राप्त करना है ऐकत्व क्योंकि अभी युद्ध और संघ की ही उपलब्धि हुई है न।

एक शब्द में कहें तो हमें भगवान को पाना है और अपने आपको उसके दिव्य-स्वरूप की प्रतिमा के रूप में फिर से गढ़ना है।

सूचना

मेरे पास अच्छे घरानों के ५०० के लगभग योग्य लड़के, लड़कियों की सूची तैयार है, जो विप्र-बन्धु इससे लाभ उठाना चाहें, वह मुझे मिलें या लिखें।

दौलत राम गंगाहर
१६/७ डबल स्टोरी, रमेश नगर,
नई दिल्ली-१५

निवेदन

आप के जाति प्रेम को देखते हुए कुछ महीनों से "वशिष्ट" आप की सेवा में पहुँच रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। निवेदन है कि आप इसकी ग्राहकता स्वीकार करें और इसका वार्षिक शुल्क विशेष ११ रु० या साधारण ५ रु० शीघ्र ही दस्ती अथवा मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें।

सोमनाथ तेजपाल
फर्म बेलीराम सोमनाथ,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

आवश्यक सूचना

यदि किसी विप्र बन्धु को क्लेम या महाजरीन सम्पत्ति झगड़ के सम्बन्ध में कोई कानूनी मश्वरे की आवश्यकता हो तो वह इस पते पर मिल कर अथवा यन्त्र व्यवहार द्वारा निशुल्क मश्वरा प्राप्त कर सकते हैं।

मनमोहन कृष्ण बग्गा एडवोकेट
माडल टाऊन रोड जालधर

धन्यवाद और बधाई

महासभा के मंत्री तथा तिलक नगर ब्राह्मण सभा के प्राण श्री पं० शिवचरणदास शर्मा, 15/1 तिलक नगर, के सुपुत्र चिरंजीव श्री धनराज पाल की सगाई श्री पं० हरबंश लाल शर्मा, Q 25-27 डबल स्टोरी, मलकागंज, की सुपुत्री से ३० अप्रैल, १९६७ को हुई। इस खुशी में प० शिवचरणदास जी ने ५ रु० 'वशिष्ट' के सहायता कोष में दिये हैं। इसके लिये पडित जी का हार्दिक धन्यवाद करते हुए परमात्मा से प्रार्थना है कि यह सम्बन्ध दोनों घरानों के लिये हर प्रकार का सुख लाने वाला हो।

सोमनाथ तेजपाल
मुख्य प्रबन्धक
'वशिष्ट'

सरस्वती

जिसने दो महाविद्वानों के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बन कर अपना कर्त्तव्य पूरा किया।

पटना के पास सोन नदी के तट पर महींयसी नाम का एक गाँव था। उसमें विष्णुदत्त नाम का एक बड़ा भारी विद्वान् ब्राह्मण रहता था। उसी के घर सरस्वती का जन्म हुआ था। पिता ने सरस्वती को पढ़ा लिखा कर बड़ी योग्य बना दिया था। यह दर्शन शास्त्र की बड़ी पण्डिता थी।

पिता की हार्दिक इच्छा थी कि जैसी सरस्वती योग्य है वैसा ही इसे योग्य वर भी मिले।

उन दिनों कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डन की बड़ी प्रसिद्धि थी। मण्डन का वास्तविक नाम तो विश्वरूप था परन्तु वैदिक धर्म की जिन २ बातोंका बौद्ध लोग खण्डन कर उन्हें झूठी बतलाया करते थे, उन सभी बातों का मण्डन कर यह उन्हें सच्ची प्रमाणित कर दिखाया करता था। इसी मण्डन करने के कारण ही लोगों में विश्वरूप का नाम मण्डन मिश्र प्रसिद्ध हो गया था। विष्णुदत्त ने इसी मण्डन मिश्र से सरस्वती का विवाह-सम्बन्ध निश्चित किया। विवाह हो जाने पर सरस्वती अपनी सुसराल महीष्मती नगर में चली गई और वहाँ पतिपत्नी दोनों ही बड़े प्रेम से रहने लगे।

मण्डनमिश्र के पास सैंकड़ों व्यक्ति पढ़ने और हजारों धर्म की बातें पूछने आया करते थे। गृहस्थी होकर भी ये पति-पत्नी दोनों सदा शास्त्र के प्रचार और धर्म के उद्धार में लगे रहते। इसी से जहाँ विद्वानों में मण्डन का नाम था, वहाँ सरस्वती का भी कम मान न था। इन दिनों श्री शंकराचार्य भी वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे थे। उन्होंने बहुत स्थानों पर बौद्धों को हराया था। इनकी युक्ति का लोहा सारा देश मान चुका था। यह अपने समय के बड़े भारी विद्वान थे। परन्तु इनका मण्डन मिश्र से कुछ बातों में मत भेद था। इसलिये यह महीष्मती में मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ करने के लिए गये और वहाँ जाकर इन्होंने मण्डन मिश्र से कहा, "आप मुझ से शास्त्रार्थ करें। यदि शास्त्रार्थ में आप जीत जायें तो मैं आपका शिष्य बन कर आपकी आज्ञानुसार काम करूँगा और यदि मैं जीत गया तो आप को मेरा शिष्य बन कर संन्यासधर्म का पालन करना होगा।" मण्डन ने यह बात बड़े हर्ष से स्वीकार कर ली, क्योंकि वह समझता था कि संसार भर में उसे शास्त्रार्थ में हराने वाला कोई नहीं है। शास्त्रार्थ होगा, यह तो निश्चित हो गया, परन्तु इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ कौन बने? उन दोनों की योग्यता का विचार करते हुए किसी पण्डित को यह साहस न होता था कि उन के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बनना स्वीकार करे। सभी यही कहते थे, उन दोनों की बातें समझ कर यदि कोई ठीक २ हार जीत का निर्णय कर सकता है, तो वह केवल सरस्वती ही है। पर वह मण्डन की धर्मपत्नी होने से मध्यस्थ नहीं हो सकती। भला श्रीशंकराचार्य उसे मध्यस्थ कैसे स्वीकार करेंगे? क्योंकि वह जानते हैं कि यदि वह जीत भी जायें तो भी सरस्वती उनकी जीत न कहेगी, क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसका पति सन्यासी हो जाय और चाहे भी कैसे? पति के सन्यासी होने से उसका सारा घर चौपट होता। उसका सुख मिट्टी में मिलता और सुहाग छिनता है। उसे सुहागिन हो कर भी विधवाओं की भान्ति रहना पड़ता है।

परन्तु जब श्रीशंकराचार्य ने सभी विद्वानों के मुख से सरस्वती की बड़ाई सुनी, तो उन्होंने कहा, "जब सरस्वती जैसी विदुषी यहाँ विद्यमान् हैं, तो फिर और किसी मध्यस्थ ढूंढ़ने की क्या आवश्यकता ? उन्हें ही मध्यस्थ बनाया जाय।" सरस्वती मध्यस्थ बनी और श्री शंकराचार्य का मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। यह शास्त्रार्थ कई दिनों तक रहा। नित्य भोजन के समय सरस्वती श्रीशंकराचार्य को कहती "आचार्य ! भिक्षा का समय हो गया है, भिक्षा करें। "और अपने पति को कहा करती, नाथ ! अब आप भी भोजन कीजियेगा"। इस प्रकार दोनों भोजन करते और फिर शास्त्रार्थ में लग जाते।

एक दिन श्रीशंकर की युक्तियों से सरस्वती के चित में कर्त्तव्य और ममता दृष्टिगोचर होने लगे। वह सोचने लगी, कि पति की पराजय कह उनका यश और अपना सुख नष्ट कर लूँ, या प्रेम के मोह में पड़ कर अपना कर्त्तव्य भूल जाऊँ। इस विचार ने उसके मन में उथल-पुथल मचा दी। परन्तु धन्य है, वह रमणी-रत्न जिस ने अपने कर्त्तव्य की वेदी पर अपने सुख का बलिदान कर दिया। उसने श्रीशंकराचार्य को कहा, "आचार्य भिक्षा समय हो गया है, आप भिक्षा करें" और फिर अपने पति से कहा, "आप भी भिक्षा के लिए जायें। यह सुन मण्डन ने शास्त्रार्थ छोड़ कर आचार्य के चरणों पर सिर झुका दिया और लोग सरस्वती के सत्य की प्रशसा करने लगे।

सचमुच सरस्वती, जैसी विदुषी थी, वैसी ही सत्यवादिनी भी, उसकी योग्यता तो इसी से सिद्ध हो जाती है कि उसे भारतवर्ष के उन दो विद्वानों के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बनने का गौरव प्राप्त हुआ था जिनकी धाक उस समय सारे भारतवर्ष में जम चुकी थी और सच्चाई का इस शास्त्रार्थ से पता लगता है, कि उस ने सत्य की रक्षा के लिए अपना सुख और सौभाग्य दोनों को सदा के लिए छोड़ दिया।

"गंगाहर"

जानकारी :—

१. बंगाल के कुँवारे मुख्य मंत्री —

स्वतंत्रता के बाद बंगाल में अब तक कुँवारे ही मुख्यमंत्री रहे हैं। पहले डा० पी०सी० राय थे, फिर श्री पी० सी० सेन और अब श्री अजय कुमार मुखर्जी हैं।

२. राजा रामगढ़ का सारा वंश चुनाव में विजयी —

राजा कामकेशनरायण सिंह, माता, राजमाता, राजकुमार इन्द्र जतेन्द्र नारायण सिंह असेम्बली के और राजा की धर्मपत्नी रानी ललिति राज लक्ष्मी, छोटा भाई श्री बसंत नरायण सिंह और उनकी पत्नी विजय राजे लोकसभा की सदस्य चुनी गई हैं।

३. ३४ पाटिल —

महाराष्ट्र की विधान सभा में इस समय ३४ पाटिल हैं। इनमें से पाँच मन्त्री या उपमंत्री हैं। तीन सदस्यों के नाम शिवाजी पाटिल हैं। बारह नायक, आठ देश मुख और ११ महिलायें हैं।

४. इन्दिरा मंत्रीमंडल —

इन्दिरा मन्त्रीमंडल में सात डाक्टर हैं ६ डाक्टर आफ फिल सफी और एक डाक्टर आफ मेडिसिन ! मंत्रीमंडल के मंत्रियों की औसत आयु ५१.७ वर्य है। सबसे बड़ी आयु के मंत्री श्री मोरारजी देसाई (७१ वर्षीय) हैं और सबसे कम आयु के डा० करण सिंह (३६ वर्षीय)।

५. अवैतनिक मंत्री —

डा० करण सिंह न कुछ वेतन लेंगे और न ही सरकारी बंगले में ठहरेंगे।

आपने पन्द्रह वर्ष तक जम्मू कश्मीर के सदरे-रियासत होते हुए भी कोई वेतन नहीं लिया।

६. लोक सभा का विद्यार्थी सदस्य —

नई लोक सभा में लंकाद्वीप का प्रतिनिधि एक २५ वर्षीय कानून का विद्यार्थी श्री पी० एम० सईद हैं। ये सबसे कम आयु के सदस्य हैं।

७. श्री राम का आर्शीवाद —

मध्य प्रदेश की विधान सभा के सदस्य श्री तेज राम के सारे शरीर पर (सिर से पाँव तक) श्री राम के शब्द गुदे हुए हैं। आपने कांग्रेस टिकट पर अपने तीन बिरोधियों को हराया। आपका विश्वास है कि मेरी यह जीत श्री राम के आशीर्वाद का परिणाम है।

"ललित कुमार"

(स्वदेश प्रेम)

श्री दिनेशकुमार शर्मा 4A/32 तिलक नगर, नई दिल्ली ।

अतुलनीय जिनके प्रताप का, साक्षी है प्रयत्क्ष दिवाकर ।
घूम-घूम कर देख चुका है, जिनकी निर्मल कीर्ति निशाकर ।।
देख चुके हैं जिनका वैभव ये नभ के अनंत तारागण ।
अगणित बार सुन चुका है नभ, जिनका विजय-घोष रण-गर्जन ।।
शोभित है सर्वोच्च मुकट से, जिनके दिव्य देश का मस्तक ।
गूँज रही हैं सकल दिशाएँ, जिनके जय-गीतों से अब तक ।।
जिनकी महिमा का है, अविरल, साक्षी सत्य-रूप हिमगिरिवर ।
उतरा करते थे विमान दल, जिसके विस्तृत वक्षःस्थल पर ।।
सागर निज छाती पर जिनके, अगणित, अर्णव-पोत उठाकर ।
पहुँचाया करता था प्रभुदित, भू-मंडल के सकल तटों पर ।।
नदियाँ जिनकी यश-धारा-सी, बहती हैं अब भी निशि-वासर ।
ढूँढो उनके चरण-चिन्ह भी, पाओगे तुम इनके तट पर ।।
विषुवत् रेखा का वासी जो, जीता है नित हाँफ-हाँफ कर ।
रखता है अनुराग अलोकिक, वह भी अपनी मातृ-भूमि पर ।।
ध्रुव-वासी जो हिम में तम में, जी लेता है काँप-काँप कर ।
वह भी अपनी मातृ-भूमि पर. कर देता है प्राण निछावर ।।
तुम तो हो प्रिय बन्धु, स्वर्ग-सी, सुखद सकल विभवो की आकार ।
धरा शिरोमणि मातृ-भूमि में, धन्य हुए हो जीवन पाकर ।।
तुम जिसका जल-अन्न ग्रहणकर, बड़े हुए लेकर जिसका रज ।
तन रहते कैसे तज दोगे, उसकी हे वीरों के वंशज ।।
जब तक साथ एक भी दम हो, हो अवशिष्ट एक भी धड़कन ।
रखो आतमा-गौरव से ऊँची, पलकें, ऊँचा सिर, ऊंचा मन ।।
एक बूँद भी रक्त शेष हो, जब तक तन में हे शत्रुजय ।
दीन वचन मुख से न उचारो मानों नहीं मृत्यु का भय ।।
निर्भय स्वागत करो मृत्यु का, मृत्यु एक है विश्राम-स्थल ।
जीव जहाँ से फिर चलता है, धारण कर नव-जीवन संबल ।।
मृत्यु एक सरिता है, जिसमें, श्रम से कातर जीव नहाकर ।
फिर नूतन धारण करता है, काया-रूपी वस्त्र बहाकर ।।
सच्चा प्रेम वही है जिसकी तृप्ति आत्म-बलि पर हो पर निर्भर ।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण निछावर ।।
देश प्रेम वह पुन्य-क्षेत्र है, अमल असीम त्याग से विसहित ।
आतमा के विकास से जिसमें, मनुष्यता होती है विकसित ।।

एक आवश्यक पत्र

सेवा में

परम आदर्नीय श्री संपादिक महोदय 'वशिष्ट दिल्ली'

सादर वन्दे ! वर्तमान काल में विद्यमान आप जैसे कुछ विशेष उच्च कोटि के विद्वानों की सेवा में यह प्रार्थना पत्र भेज कर उनके शुभ विचारों का संग्रह कर रहे हैं और उन विचारों को संसार के सभी भले लोगों और विशेष कर भारत की आर्य (हिन्दू) समाज के कल्याणार्थ उन की सेवा में भेंट करने की इच्छा रखते हैं। आशा है कि आप अपने उत्तम विचारों को शीघ्र भेज कर हमें, अनुगृहीत करेंगे कि -- (१) किन सद्गुणों के कारण कुछ शताब्दियों पूर्व संसार के सभी भले लोग भारत की हिन्दू समाज को आर्य (श्रेष्ठ) कहकर पुकारते थे, हृदय से उनका सम्मान करते, इन से प्रेम करते थे और इन को अपनी संसारिक उन्नति (१०० वर्ष पर्यन्त परम सुख शान्तिमय जीवन और अन्य प्रकार की भौतिक उन्नति) तथा पार लौकिक उन्नति (शरीरांत होने पर सद्गति की प्राप्ति) का मुख्य साधन मानते थे इतना ही नहीं स्वर्ग लोक के देवता भी स्वर्ग के उत्तम भोगों को तुच्छ मान कर इस अवतारों, ऋषियों तथा महात्माओं की पवित्र भूमि आर्यावर्त में जन्म लेने की सदा इच्छा किया करते थे।

(२) किन दुर्गुणों के अपनाने के कारण सर्व प्रकार से उन्नति के शिखिर पर पहुँचा इतना विशाल देश भारत जिसकी जन संख्या इतनी अधिक थी वह इतनी वर्तमान हीन दीन दशा को पहुँच गया कि विदेशी आक्रमण कारियों ने अनेक बार अपने थोड़े से साथियों के साथ इस पर आक्रमण किया। वह निडर होकर भारत के भीतर दूर दूर तक घुसे चले जाते उनके रास्ते में जो आता उसे काट कर मार गिराते, वह भारत की अनेक सुन्दर युवतियों को उनसे छीन कर अपनी दासी बनाकर अपने देश में ले गये। अनेक भारत के माननीय लोगों को बन्दी बनाकर अपने देश में उनसे दास का काम लिया। उन्होंने भारत में अनेक देव मन्दिरों का अपमान किया और उन का तोड़ फोड़ किया, उनके अपार धन की लूट की, उनके अनेक लोगों को जिस किस प्रकार से अपने धर्म को त्याग कर उनके धर्म को अपनाने के लिए बाध्य किया, और फिर ऐसे लोगों को अपने ही उन भाइयों का जो अपने हिन्दू धर्म पर आरूढ़ रहे, का घोर शत्रु बना दिया और फिर पिछली कई शताब्दियों से अपने देश से आ आ कर बेधड़क हो इन पर शासन करते रहे और भारत की जनता चुपचाप उनके अन्यायों, अत्याचारों तथा अपमानों का सहन करती रही "मानों वह, मृतक के समान हो चुकी थी।"

(३) किन अवगुणों के त्यागने तथा सद्गुणों को अपनाने से भारत की यह जनता फिर से अपनी पहली जैसी उच्च पदवी को प्राप्त कर सकती है और किस प्रकार से।

(४) संसार के अन्य देशों की जनता को ऐसें उच्च पदवी पर पहुँचे हुए भारत से क्या लाभ पहुंचेगा।

हम पुन: आप से अपने उत्तम विचारों को भेज देने की प्रार्थना करते हैं।

भवदीय

नाभिराम जोशी।

रामतेल भवन, ७/२० दरियागंज, दिल्ली।

"राष्ट्र भाषा तो हिन्दी ही है, यदि हिन्दी अँग्रेजी का स्थान ले तो अच्छा ही लगेगा। अँग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है लेकिन वह राष्ट्र भाषा कभी नहीं बन सकती, आज उसका साम्राज्य सा जरूर दिखाई पड़ता है उसके प्रभुत्व से बचने के लिए काफी प्रयत्न करते हुए हमारे राष्ट्रीय कार्यों में अँग्रेजी ने बहुत बड़ा स्थान प्राप्त कर लिया है लेकिन इससे हमें इस भ्रम में कमी नहीं पड़ना चाहिए कि अँग्रेजी राष्ट्र भाषा बन रही है।

यदि हिन्दुस्तान को हमें सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है वह किसी विदेशी भाषा को कभी प्राप्त नहीं हो सकता।"

—महात्मा गाँधी

क्या लोगे ?

(पंजाब के एक देहाती मित्र को परामर्श जो दिल्ली में रहना चाहता है)

श्री दीवान बलराज, मालवीय नगर,

क्या राशन कार्ड बनवा लोगे ? मटियाला ग्राटा खा लोगे ।
कन्धे पर छाज उठा लोगे और हफ्ते हफ्ते जा लोगे ।
तुम वहीं रहो तो अच्छे हो, दिल्ली आकर क्या लोगे ?
मीलों पर घर से है दफ्तर । हर सुबह सफर हर शाम सफर,
साईकल पर काटोगे चक्कर, बसों में सर फड़वा लोगे,
तुम वहीं रहो तो अच्छे हो, दिल्ली में आकर क्या लोगे ?
इस शहर में वो मंहगाई है, हर लब पर हाल दुहाई है ।
बस हाथों हाथ सफाई है, जितना भी रोज कमा लोगे ।
तुम वहीं रहो तो अच्छे हो, दिल्ली में आकर क्या लोगे ?
यहाँ दूध न मक्खन न लस्सी है, थल में हर पुन्नू सस्सी है ।
हर खोखे का दर अस्सी है, इक खाट पर सारे आ लोगे ।
तुम वहीं रहो तो अच्छे हो, दिल्ली में आकर क्या लोगे ।
हाँ, फैशन की भरमारें हैं, कुछ शक्लें क्या तलवारें हैं ।
बिजली की नंगी तारें हैं, कोई छूकर जान गंवा लोगे ।
तुम वहीं रहो तो अच्छे हो, दिल्ली में आकर क्या लोगे ।

शोक समाचार

१. महासभा के प्रधान की पूज्य माता का देहान्त

श्री पं० सोमनाथ तेजपाल, प्रधान, अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण महासभा (रजि०) दिल्ली, की पूज्य मात श्रीमती इन्द्रकौर जी ।



२१ मई, रविवार को तीन बजे दोपहर को परलोक सिधारीं । स्वर्गीय माता बड़ी भागशाली थीं । उनके पाँचों बेटे श्री पं० आर० आर० तेजपाल (आजीवन सदस्य महासभा) श्री पं० फकीर चन्द जी तेजपाल (सरक्षक महासभा) श्री पँ० साईंदास जी तेजपाल, श्री पं० सोमनाथ जी तेजपाल आ० स० महासभा) तथा श्री पं० गंडाराम जी तेजपाल (आ० स० महासभा) बड़े नेक, सेवादार और धनी हैं । सब ने माता जी की सेवा में बढ़ चढ़ कर भाग लिया परन्तु सेवा का अधिक अवसर पं० सोमनाथ और उनकी धर्म पत्नी को प्राप्त हुआ क्योंकि माता जी दिल्ली में रहना पसन्द करती थीं ।

मैं अपनी महासभा के कार्यकर्त्ताओं तथा सदस्यों की ओर से पं० सोमनाथ जी तथा उनके दूसरे भाईयों और रिश्तेदारों से हार्दिक शोक प्रकट करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि मृतक की आत्मा को सदगति नसीब हो ।

२. प्रधान, पंजाब प्रान्तीय ब्राह्मण मंडल, जलंधर को सदमा—

श्री पं० मेलाराम जी भास्कर, प्रधान प्रान्तीय ब्राह्मण मंडल, जलंधर, की धर्म पत्नी का १ मई को मकेरियां, जिला होशियार पुर में स्वर्गवास हो गया है । सर्व शक्तिमान परमात्मा से प्रार्थना है कि मृतक की आत्मा को सदगति और पं० मेलाराम जी व दूसरे रिश्तेदारों को इस दुःख के सहने की शक्ति दें ।

३ आह ! पं० एस० एस० देवगन—

श्री पं० झंडा लाल जी जोशी, रासजस रोड, देव नगर, के दामाद श्री पं० एस० एस० देवगन, अंडर सेक्रेटरी, आफिस पब्लिक सर्विस कमिशन की अकाल मृत्यु पर जितना शोक प्रकट किया जाये थोड़ा है । आप बड़े नेक, योग्य और कर्त्तव्य परायण व्यक्ति थे । आपके दो (एक डाक्टर, दूसरा डिप्टी कलेक्टर) सुपुत्रों के विवाह ११ मई वा १२ मई को थे । आप ५ मई को अचानक बीमार हो गये और ६ मई को विलिंगडन अस्पताल ले जाये गये । इसलिये दोनों सुपुत्रों के विवाह में शामिल न हो सके । और १९ मई को अस्पताल में ही स्वर्ग सिधार गये ।

मैं अपनी और महासभा की ओर से श्री जोशी जी श्री देवगन के सुपुत्रों तथा अन्य रिश्तेदारों से बड़े दुःख भरे दिल के साथ शोक प्रकट करता हुआ परमात्मा से प्रार्थी हूँ कि स्वर्गीय की आत्मा को सदगति और सारे रिश्तेदारों को इस महादुःख के सहन करने की शक्ति प्रदान करे ।

४. जनता का सेवक चल बसा—

श्री पं० पंजाब सिंह जी, मोती नगर, के चचेरे भाई श्री पं० रघुवीर सिंह जी की अकाल मृत्यु पर हार्द्रिक शोक प्रकट करता हुआ परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि मृतक की आत्मा को सदगति और रिश्तेदारों को इस दुःख के सहने की शक्ति प्रदान करें स्वर्गीय रघुबीर सिंह उच्च कोटि के कारीगर और मशीनरी के जानकार थे । अपने घर या मुहल्ले में किसी के घर जब किसी की बिजली, पंखा रेडियो आदि खराब हो जाते तो झट पंडित जी को बुलाया जाता और वह बिना कुछ लिये सब का काम ठीक कर देते थे । सारे मोती नगर में उनकी मृत्यु पर मातम मनाया गया है ।

'गंगाहर'

लेख—

नेहरू और हमारी नई राष्ट्रीय संस्कृति

श्री सत्यकाम वर्मा

यह कहना बहुत अंश तक सच है कि जब कोई व्यक्ति अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है तब प्रायः उसकी प्रशंसा का गान होने लगता है। उसके जीवन काल में हम उसका विरोध करते उकताते नहीं। यह सभवतः इस कारग है कि हम



अत्यधिक सजीव सामीप्य के कारण अपनी पर्यालोचना का सामर्थ्य खो वैठते हैं। महात्मा गाँधी से भी अधिक यह बात जवाहरलाल नेहरू के विषय में अधिक सत्य उतरती है। उस महान नेता के जीवन में प्रशंसकों और आलोचकों- दोनों ने ही समान रूप से उनके प्रति और मूल्यांकन के प्रति अपनी आँखें बन्द की हुई थीं। उनके सम्बन्ध में अधिकांश बातों का निणय प्रायः अन्त तक उन बातों के आधार पर किया जाता रहा और उनके पक्ष या विपक्ष में दलीलें दी जाती रहीं, जिन्हें हम नेहरू जी की आरम्भिक धारणाएँ कह सकते हैं।

विकासशील व्यक्तित्व

इस सम्बन्ध में सबसे प्रमुख उपेक्षित सत्य यह है कि जवाहर लाल जी का व्यक्तित्व निरन्तर विकासशील रहा है। उन जैसा विकासशील और युग-प्रभावों के प्रति सचेत व्यक्तित्व युगों बाद कभी किसी को मिलता है। विलासिता और सम्पन्नता के जिस वातावरण में वे पले और बढ़े उससे अन्य कोई व्यक्तित्व भले ही विलासिता के क्षेत्र में बढ़ जाता, किन्तु जवाहरलाल के व्यवितत्व में इस सब ने एक नया ही प्रभाव डाला। सम्पन्नता एवं सन्तोष की एक पृष्ठभूमि उन्हें मिली। वे आम लोगों में से निश्चय ही नहीं थे, परन्तु आर्थिक निश्चिन्तता के कारण उनका ध्यान केवल आम समस्याओं तक भी केन्द्रित नहीं था। वे जीवन के व्यापकतर अभावों पर दृष्टि डालने के लिए उन्मुक्त थे।

उनके विकास की दूसरी आधारभूमि थी उनके पिता का नेतृत्व। उस समय तक भारतीय राजनीति दो प्रकार के नेतृत्वों को पा चुकी थी। पहला और आरम्भिक नेतृत्व उसे उच्चवर्ग के उन लोगों से मिला था, जिन्हें जनजीवन के अभावों और देश की स्वतन्त्रता के बीच सम्बन्ध का पूरा अनुमान था। जिन्हें अनुमान था वे सत्य कहने से घबराते थे। ये लोग पाश्चात्य शिक्षा से अक्षित होने के कारण अपने को अधिक प्रबुद्ध समझते थे। विदेशी सरकार की भाषा सीख लेने के कारण ये लोग स्वयं को उसके अधिक निकट और उसकी सहानुभूति का हकदार पाते थे। गाँधी जी से पहले लोकमान्य तिलक ने इस धारणा को तोड़ा। उनकी पृष्ठभूमि शुद्ध भारतीय थी। अँग्रेजी शिक्षा दीक्षा ने उन पर उच्चता का कोई लेप न चढ़ाया था।

गाँधी जी अँग्रेजी शिक्षा में रंग कर भी उसके न बने थे। अफ्रीकी भारतीयों के उनके अनुभव ने उन्हें आम जनता का आदमी बना दिया था। वहीं पर वे भारतीय संस्कृति पर अभिमान करने लगे थे। पर भारत लौट कर तिलक और स्वामी श्रद्धानन्द के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण वे एक नए नेतृत्व के प्रतीक बन गए।

श्री मोतीलाल नेहरू इन दो विरोधी ढंग के नेतृत्वों के बीच की कड़ी थे। एक ओर तो उनका ढाँचा अँग्रेजीदाँ लोगों से मिलता-जुलता था, दूसरी ओर वे उनके समान ही प्रस्ताव पास करने और वादविवाद की राजनीति तक सीमित न रहना चाहते थे। उन्हें तिलक की उग्रता पसन्द तो न थी पर उसे भी वे किसी सीमा तक जरूरी मानते थे। महात्मा गाँधी का आगमन उनके मन के अनुकूल बैठा। वे पश्चिम में उठते समाजवाद के सम्पर्क में न थे। वह उनकी प्रकृति के भी अनुकूल न था। पर भारतीय राजनीति के बदलते मोड़ में वे किसी से पीछे रहना भी न चाहते थे। वे धीरे-धीरे स्वशासन की माँग की ओर से पूर्ण स्वराज्य की ओर बढ़ रहे थे। पूर्ण स्वराज्य की घोषणा का कार्य यद्यपि उनके पुत्रके ही भाग्य मेंथा।

परन्तु पूर्ण स्वराज्य की घोषणा करने के लिए भी एक व्यापक पृष्ठभूमि की आवश्यकता थी। यह पृष्ठभूमि जवाहरलाल नेहरू को अँग्रेजी की शिक्षा के कारण नहीं मिली। बल्कि इसका कारण था उनका युग-प्रभावों के प्रति उन्मुख व्यक्तित्व। इंग्लैंड में चल रहे विविध आन्दोलनों के अतिरिक्त उन्होंने समाजवाद को उठते और बढ़ते हुए बहुत निकट से देखा था। पिता के नेतृत्वने उन्हें राजनीति के प्रति उन्मुख और उत्सुक कर दिया था। किन्तु भारतीय राजनीति उनका ध्यान आरम्भ से ही न खींच सकी थी। उन्हें पश्चिम के तथाकथित समृद्ध जीवन की पोल देखने को मिल रही थी। समाजवादी सिद्धान्तों के अधिकाधिक अध्ययन और समाजवादियों के साथ निकटतर सम्पर्क ने उन्हें भारत के लिए भी एक ही मार्ग शेष बताया। इस मामले में भारत विश्व के किसी भी दलित राष्ट्र से स्वय को भिन्न कैसे समझ सकता था? समाजवाद ने जवाहरलाल में भारत का नेतृत्व ग्रहण करने से पूर्व ही राष्ट्रीयता के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीयता की एक महत्तर भावना भर दी, जिसने आगे चलकर उनके सम्पूर्ण चिन्तन पर प्रभाव डाला। इसी अन्तर्राष्ट्रीयता को गलत दृष्टि से देखने के कारण प्रायः उनके दृष्टिकोण को भी बहुधा 'अँग्रेजीदां' समझ लिया जाता है।

नतृत्व और राष्ट्राय चिन्तन —

नेहरू की इस अन्तर्राष्ट्रीयता की अनेक रूप में व्याख्या की गई है। कुछ आलोचकों ने उनकी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं घरेलू मामलों में उदासीनता को भी इसी बात से जन्म लेता बताया है। नेहरू बहुत बड़े मानवतावादी थे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे राष्ट्रीयता को उस मानवता की राह में रोड़ा अटकाते पाते थे। बल्कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से उन्हें महात्मा गाँधी की अपेक्षा कुछ संकुचित ही कहा जा सकता है। वैसे भी वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने राष्ट्रीय काँग्रेस का अध्यक्ष बनते ही पूर्ण स्वतन्त्रता को राष्ट्र का लक्ष्य घोषित करना अपना धर्म समझा।

समाजवाद की ओर उनके झुकाव के कारण उन्हें भौतिकवाद का पुजारी और अनीश्वरवादी भी कहा जाता है। निश्चय ही वे किसी ऐसे ईश्वर या किसी ऐसी शक्ति में विश्वास नहीं रखते थे, जिसके लिए आत्मनिरीक्षण स बड़ी कोई साधना और मानवता की सेवा से बड़ी कोई पूजा करनी पड़े। वे प्रकृति के खुले मन्दिर को छोड़ कर किसी और मन्दिर में पूजा करने जाने को भी तैयार न थे। वे पत्थर को ही देवता न मान कर प्रकृति के हर कण को देवता मानते थे। आज का विज्ञान इस नए देवता की उपासना के कारण ही सब मानवों

के सुखी जीवन के साधन जुटाने में समर्थ हो पाया है।

उन्हें भी भारत के अतीत पर नाज था। पर वे केवल उस नाज में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री न कर बैठना चाहते थे। वे जानते थे आज की दुनिया इतनी आगे बढ़ चुकी है कि केवल अतीत की दुहाई देने से ही कुछ न हो सकेगा। वे जानते थे कि भारत के पास अब भी अपने अतीत में से चुन लाने को ऐसे मोती हैं, जिन्हें विश्व के पारखी आज भी विमुग्ध दृष्टि से देखेंगे। महात्मा गांधी कुछ ऐसे ही मोती चुन लाए थे। नेहरू ने अपने राजनैतिक जीवन में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कुछ ऐसी देनें दी हैं, जिनसे अतीत भारत की निधि और उसके प्रति उनकी आस्था का ही अनुमान नहीं होता, बल्कि यह भी पता चलता है कि विश्व-शान्ति के क्षेत्र में भारत अब भी विश्व का नेतृत्व कर सकता है।

सच तो यह है कि वे बुद्ध के मानवतावाद एवं गांधी जी के अहिंसा सिद्धान्त के सक्रिय रूप में इतने बड़े पुजारी थे कि चीनी आक्रमण के समय, और उससे पहले पाकिस्तान के आक्रमण के समय भी दिखाए गए उनके धैर्य के कइयों को उनका कटु आलोचक बना दिया। गोआ के मामले में उन्होंने जिस धैर्य से काम लिया, उससे तो यह विश्वास भी न होता था कि वे कभी उस प्रदेश को भारत में मिलाने का स्वप्न पूरा कर सकेंगे। यदि सचमुच उन पर पश्चिम की भोगवादी अथवा भौतिकवादी विचारधारा प्रभाव डाल चुकी होती तो वे प्रकृत्या अधिक उग्र होते। इसके विपरीत उनकी अन्तर्ध्यानमयी वृत्ति बताती है कि वे अपनी चेतना में ही ईश्वरत्व के दर्शन कर चुके थे 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत' का भारतीय आदर्श इसी लिए मन प्राण से अपना चुके थे। उन्हें यही सन्देश सबसे बड़ा ईश्वरीय सन्देश प्रतीत हुआ था। वे वेदान्त या भारतीय दर्शनों के इस सिद्धान्त को भी पूरी तरह मानते थे कि व्यक्ति और विश्व को परिचालित करने वाले नैतिक और भौतिक सिद्धान्त एक जैसे ही, बल्कि एक ही होते हैं। उन्होंने व्यक्ति और समस्त मानवता के बीच अन्तर देखना ही बन्द कर दिया था। राष्ट्रों के आपसी व्यवहार में पारिवारिक आचरण का ही आश्रय लेते थे और जिसे दोस्त समझते थे उसकी गलती से दुःखी होकर उसकी कड़ी आलोचना भी करते थे। इस आलोचना से घबरा कर प्रायः उनकी गुटबन्दी से अलग रहने की नीति का अर्थ किसी का भी दोस्त न बनना ले लिया जाता था। यही बात उनके व्यक्ति-गत जीवन में भी थी। पर व्यक्तिगत रूप में वे जिस खुले दिल से बात कहते थे, उसमें गलतफहमी की संभावना बहुत कम रहती थी। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का दायरा बहुत बड़ा होने से वहाँ व्यक्तिगत निकट सम्बन्धों की कीमत उतनी नहीं समझी जाती। यद्यपि यह भी सच है कि नेहरू की इस व्यक्तिगत पहुँच की भावना को लेकर ही अमरीकी राष्ट्रपति कैनेडी और रूसी प्रधानमन्त्री ख्रुश्चेव के बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने की दिशा में सक्रिय कदम उठाए गए। विरोधी नेताओं के साथ बात करने में भी वे कभी इसीलिए नहीं झिझकते थे। वे युक्ति और दलील की जिस ताकत के स्वयं कायल थे, समझते थे कि हर दूसरा व्यक्ति भी उसी शक्ति का कायल हो सकता है। इसीलिए हर बात को समझने समझाने के लिए वे तैयार रहते थे।

परन्तु भारत की संस्कृति के प्रति इतने सतर्क और सचेत रह कर भी उन्होंने आधुनिकता के प्रति अपने आकर्षण को कभी कम न होने दिया। उनकी वास्तविक आध्यात्मिकता का रहस्य ही यह था कि वे अन्धविश्वासों में बिना गए उसे एक सजीव विश्वास मानते थे। वे उसे दैनिक जीवन के अमल की वस्तु मानते थे। ठीक यही बात उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बारे में भी लागू होती है।

उनके सामने सदा विज्ञान का लोक-कल्याणकारी रूप ही प्रधान रहा। चीनी आक्रमण जैसी उत्तेजक स्थिति में भी उन्होंने अणुशक्ति के विध्वंसक अस्तित्व में विश्वास करने से इन्कार कर दिया। उन्हें पता था कि भारतीय वैज्ञानिक चाहें तो अणुबम का निर्माण कर सकते हैं। पर उन्होंने कठिनतम समय में भी अपनी यह प्रतिज्ञा दोहराई कि भारत किसी भी दशा में अणुशक्ति का प्रयोग विध्वंस के उद्देश्य से नहीं करेगा। परन्तु अणुशक्ति के विकास से वे स्वतः इतने अधिक सम्बद्ध थे कि वे आजीवन इस शक्ति के विकास-आयोग के प्रधान रहे।

भारत में आज हम वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं और विकासशालाओं का जाल बिछा सा पाते हैं। यह सब उनकी वैयक्तिक अभिरुचि का परिणाम था। वे इस बात के निर्णय में बड़ी रुचि के साथ भाग लेते थे कि ससार की वैज्ञानिक प्रगति का किस अंश तक हमें अनुकरण करना अपरिहार्य है और कितने अंश को हम चाहें तो छोड़ भी सकते हैं।

प्रतिरक्षा के सम्बन्ध में भी वे वैज्ञानिक प्रगति का पूरा अनुमान रखते थे और साधिकार इस बात पर बल देते थे कि कौन से हथियार हमें कहां से और क्यों मगाने या स्वयं बनाने चाहिए। यह बात दखलन्दाजी भी गिनी जा सकती है। पर सत्य यह है कि यदि वे इतने सजग होकर न चलते तो आज राष्ट्र में जो वैज्ञानिक रुझान हम पाते हैं, उसका अंशमात्र भी हमें आज न मिलता।

विज्ञान और संस्कृति

हम देख चुके हैं कि उनकी रुचि विज्ञान और संस्कृति दोनों ही मोर्चों पर सजग थी। इनमें से विज्ञान का सम्बन्ध प्रायः बाह्य संसार और भौतिकता से समझा जाता है, जबकि संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा और अध्यात्म से समझा जाता है। परन्तु जवाहरलाल नेहरू ने इन दोनों को ही एक दूसरे का पूरक समझा। इसका एकमात्र कारण यह था कि वे मानवता को ही अध्यातम का सही प्रतिरूप समझते थे। जो भी बात मानवता का भला कर सकती थी, उनके लिए एक सा महत्व रखती थी। वे न तो विज्ञान के बाह्य रूप पर गए थे, न ही वे संस्कृति और धर्म के बाह्यरूपों पर आस्था रखने को तैयार थे। धर्म के बाह्य रूप को वे विज्ञान के विनाशक रूप से कम विध्वंसक न मानते थे। उन्हें दोनों का वही रूप पसंद था जो मानवता का सही अर्थों में सेवा कर सकता था। कहा जा चुका है कि मानवता ही उनका धर्म था। उसे ही वे 'ईश्वर' का सच्चा प्रतिरूप समझते थे। संस्कृति के विविध अंग—धर्म आदि मानवमात्र में यदि आत्मदर्शन की सही भावना भरने के सच्चे साधन हैं, तब नेहरू को सबसे बड़ा धर्मपूजक कहने में क्या आपत्ति होनी चाहिए? हां, उनका धर्म हिन्दू, ईसाई, या मुस्लिम आदि की संकुचित परिभाषाओं में बन्द नहीं किया जा सकता। बुद्ध पर उनकी श्रद्धा भी किसी धर्म सम्बन्धी बाह्याडम्बर के कारण नहीं थी।

इस प्रकार एक ओर वे भारतीय संस्कृति के सच्चे अर्थों में पुजारी थे, दूसरी ओर उन्होंने अपनी सतत क्रियाशीलता के द्वारा भारतीय संस्कृति का रुपान्तर ही कर दिया। उन्होंने हमारे मन्दिरों का नव-निर्माण भाखड़ा, दामोदर घाटी, भिलाई, दुर्गापुर आदि स्थानों पर किया, जहाँ पूजा केवल रस्म के लिए कुछ फूल चढ़ाने से ही पूरी नहीं हो जाती, बल्कि जहां मानवता की सच्चा पूजा के लिए खून-पसीना एक कर देना होता है। वे भारत के गौरवशाली अतीत के कायल होकर भी उसके भविष्य की ओर उन्मुख थे। वे मानते थे कि भारत दुनिया में दूसरे दर्जे का राष्ट्र बनकर नहीं रह सकता। किन्तु उस दर्जे को पाने के लिए अतीत की रटन छोड़कर नई दौड़ में भाग लेना होगा। और यदि इस दौड़ में इनाम पाने के लिए कुछ पुरानी धरोवर खोनी भी पड़े तो घबराना नहीं चाहिए।

उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति का सच्चा रूप उसका मानवतावादी भावना में ही था। यदि उसके प्राचीन दृष्टिकोण की नई व्याख्या की जा सके और नया रूप दिया जा सके, तो क्या ऐसा रूपान्तरकार 'अभारतीय' दृष्टिकोण का अथवा अनीश्वरवादी कहा जा सकता है?

महाकवि विद्यापति बिल्हण:

आचार्य डा० गया प्रसाद शास्त्री "श्री हरि" साहित्याचार्य

सुरभारती के अनन्य उपासकों में महाकवि हृण का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। भगवती सरस्वती के ये वर पुत्र थे। इनके जो भी ग्रन्थ और स्फुट रचनाएं मिलती हैं, उनको पढ़ने से पता चलता है कि विद्यापति विल्हण बड़े विद्वान, दर्शनों तथा समस्त शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित थे। संस्कृत भाषा पर इनका अद्‍भुत आधिपत्य था। इनकी कविता में प्रसाद माधुर्य और ओज ये तीनों ही काव्यगुण अपने परिषक की चरम सीमा पर पहुँचे हुए हैं। इनकी कविताओं को पढ़ते समय हम आनन्द-विभोर हो जाते तथा नई नई उत्कण्ठाओं से आभेभूत से रहते हैं।

इनकी रचनाओं में 'विक्रमाङ्कदेवचरित' नामक महाकाव्य का प्रमुख स्थान है। इस महाकाव्य के अतिरिक्त 'विलहशाचरित' तथा 'कर्णसुन्दरी नाटिका' में दो और भी ग्रन्थ इनकी रचनाओं में माने जाते हैं। किन्तु 'विक्रमङ्कदेवचरित' के साथ उक्त दोनों ग्रन्थों की भाषा और शैली का साम्य न होने के कारण कई विद्वानों की इन दोनों ग्रन्थों का महाकवि विल्हण द्वारा रचित होने में संदेह है किन्तु यह सन्देह अधिक साधार नहीं हैं। परिस्थितियों के अनुसार कई बार भाषा और शैली में परिवर्तन सम्भव है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर 'विक्रमांकदेवचरित की रचना ईसा की ११ वीं शताब्दी में मानी गई है। उस समय कश्मीर में महाराज कलशदेव और दक्षिण में चालुक्य विक्रमादित्य राज्य करते थे। 'विक्रमांकदेवचरित' का महत्व काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से तो अनुपम है ही किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी इसका बड़ा महत्व है। इस ग्रन्थ के अन्त में कावकुल-शिरोमणि विल्हण ने जहाँ अपने जीवन-चरित पर प्रकाश डाला है, वहीं तत्कालीन कश्मीर का भी बहुत सुन्दर वर्णन किया है। यहाँ 'विक्रमांकदेवचरित' के आधार पर ही कविवर विल्हण का कुछ परिचय दिया जा रहा है।

महाकवि विल्हण के पूज्य पिता का शुभ नाम ज्येष्ठ कलश और माता का नाम नाना देवी था। आप के पिता वेदों तथा व्याकरण के अद्वितीय पंडित थे। पतंलि के किसी महाकाव्य पर उन्होंने कोई अपूर्व टीका या व्याख्या की थी किन्तु वह व्याख्या इस समय सुलभ नहीं है। विल्हण के दो भाई और भी थे। बड़े का नाम इष्ठराम और छोटे का नाम आनन्द था। विल्हण के समान ही ये दोनों भाई भी बड़े विद्वान तथा राज-सम्मानित थे। इनके पितामह का नाम राजकलश और प्रपितामह का नाम मुक्तिकलश था। ये दोनों [illegible] [illegible] के अतिरिक्त शास्त्रों के प्रकाण्ड पडित थे, अग्निहोत्री थे और कर्मकाण्डों के ज्ञाता थे। विल्हण का गोत्र कौशिक था। इस प्रकार विल्हण की पाण्डित्य, शास्त्रज्ञान तथा कवित्व सब कुछ परम्परानुगत उत्तराधिकार में मिला था। इनके पूर्वजों को कश्मीर के महाराज गोपादित्य कहीं से कश्मीर लाए थे, इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु यह सत्य है कि विल्हण ने अपने जन्म से कश्मीर को अलंकृत किया था और वे कश्मीर के ही एक अनुपम रत्न थे।

महाकवि विल्हण ने कश्मीर की तत्कालीन राजधानी का इस प्रकार वर्णन किया है। इस समय कश्मीर की राजधानी उपवन नामक डावन में थी। यह स्थान प्रवरपुर से ५ मील की दूरी पर था। यहाँ एक विशाल, गगन-चुम्बी सुन्दर मन्दिर और आदिस्वामी तक्षक का कुण्ड था। इस कुण्ड में सदा निर्मल जल भरा रहता है। उसी कुण्ड से थोड़ी सी दूर पर खानेपुर नामक ग्राम में महाकवि विल्हण रहते थें। अपने ग्राम खानेपुर की प्रशंसा करते हुए आप लिखते हैं कि यह ग्राम श्रीकण्ड भगवान-शकर के श्वसुर पर्वतराज हिमालय का [illegible] का रत्नभूत तथा आश्चर्यजनक कथाओं का उद्‍गम-क्षेत्र एवं लीला-स्थल है। इस ग्राम के एक ओर यहाँ स्वभाव-सुन्दर केसर उत्पन्न होती है, वहीं दूसरी ओर सरयू के किनारे पौंडे के बड़ी बड़ी गंडेरियों के समान

श्वेत द्राक्षाएँ (अंगूर) उत्पन्न होती हैं अपने ग्राम का वर्णन करने के अतिरिक्त बिल्हण ने 'वक्रमांकदेवचरित' के अन्तिम ३२ पद्यों में कश्मीर का इतना सुन्दर और इतना हृदयग्राही वर्णन किया है कि मन आनन्द विभोर हो जाता है। कवि की नवोन्मेषशालिनी प्रतिमा पर प्रणविद्यावर हो जाते हैं।

बिल्हण का जन्म, लालन-पालन और विद्याध्ययन सब कुछ कश्मीर में ही हुआ। बिल्हण ने अपने यौवन के प्रभात-काल में ही सुयश, सम्मान तथा सम्पत्ति का विपुल अर्जना कर लिया था। कश्मीर के अतिरिक्त भारत के अन्त सुदूर प्रान्तों में में भी बिल्हण की विद्वता तथा अद्भुत कवित्व-शक्ति की सुरभि पहुँच चुकी थी। विदेशी आक्रान्ताओं के आधिपत्य से पूर्व कितनी ही शताब्दियों तक कश्मीर भारतीय संस्कृति, सभ्यता, कला, विद्या और ज्ञान विज्ञान का केन्द्र था। ज्ञान विज्ञान का क्षेत्र में कश्मीर और काशी इन दोनों विशिष्ठ केन्द्रों में सदा ही प्रतिस्पर्धा चलती रहती थी। 'काव्यप्रकाश' के रचयिता मम्मट, पंतजलि के महाभाष्य के व्याख्याकार कैयट और सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ राजतरंगिणी के प्रणेता कलहण आदि वाङदेवता के वरपुत्रों को जन्म देने का श्रेय एकमात्र कश्मीर की देवभूमि को है। कश्मीर किसी समय वास्तव में स्वर्ग था और उसके निवासी 'विद्वांसा हि देवाः' के अनुसार सचमुच देवता थे। महाकवि इसी देवभूमि के परमोज्जवल रत्न थे।

बिल्हण ने अपने यौवन-काल में प्रायः समस्त भारत की यात्रा की थी। वे कश्मीर से चलकर पंचनद (पंजाब) होते हुए मथुरा, वृन्दावन आये और वहाँ से वे कान्यकुब्ज (कन्नौज) पहुँचे। इस नगर के सौन्दर्य और वैभव का वर्णन उन्होंने बड़े सुन्दर रूप में किया है।

कन्नौज से प्रयाग तथा काशी होते हुए वे महाराज भोज की राजधानी धारा नगरी में पहुँचे। उस समय महाराज भोज न थे, अतः बिलहण ने निराश्रिता धारा नगरी का वर्णन अत्यन्त करूण शब्दों में किया है। बिलहण के हृदय में महाराज भोज के प्रति असीम सम्मान था। धारा से वे गुजराता होते हुए सोमनाथ के मन्दिर में पहुँचे। वहाँ भगवान सोमनाथ के दर्शन करके वे वेरावल से जहाज द्वारा दक्षिण को चले गये। उस समय दक्षिण भारत के प्रसिद्ध प्रशासक महाराज चालुक्य विक्रमादित्य ने विलहण का अत्यधिक सम्मान किया और उन्हें विद्यापति की पदवी से विभूषित किया। विलहण ने इन्हीं महाराज चालुक्य विक्रमादित्य के आश्रय में रहकर अपनी वृद्धा वस्था में "विक्रमाङ्कादेवन्तरित" नासक महाकाव्य की रचना की।

विलहण ने अपने जीवनकाल में कितने ग्रन्थ लिखे तथा क्या-क्या लिखा इसका कुछ पता नहीं चलता है। यहाँ विलहण के कुछ स्फुट नीति पद्यों को उद्घृत किया जाता है। आप विद्या के सम्बन्धों में लिखते हैं -

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तकभारति।
व्यय तो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सचयात्॥

अयि भारति! तुम्हारा यह खजाना बड़ा विचित्र है। यदि इसे खर्च किया जाता है तो बढ़ता है और यदि इसे सुरक्षित रखा जाता है तो नष्ट हो जाता है। वास्तव में विद्यादान से बढ़ती है अन्यथा विस्मृत हो जाती है।

अब देखिए विलहण जी सज्जन और दुर्जन के स्वभाव का कैसा सुन्दर विश्लेषण करते हैं। आप लिखते हैं—

अमृतं करति हिमांशुर्विषमेव रणी समुइगिरति।
गुणमेव वक्ति साधुदोषम साधुः प्रकाशयति॥

चन्द्रमा अमृत की ही वर्षा करता है और सर्प सदा विष का ही वमन करता है। ठीक इसी प्रकार सज्जन पुरुष सदा दूसरों के गुणों की ही प्रशंसा करते हैं। किन्तु दुर्जन पुरुष सदा दूसरों के दोषों का ही वर्णन करते हैं। सज्जन और दुर्जन पुरुषों के स्वभाव का कितना सुन्दर चित्रण है। अति-परिचय के दोष के सम्बन्ध में विलहण लिखते हैं—

अति परिचयदिवज्ञता सतत गमनादनादरों भवति।
लोकः प्रयागवासी कूपे स्नाने समान्तरति॥

अत्यन्त परिचय से अपमान होता है और किसी व्यक्ति के घर पर निरन्तर जाते रहने से अनादर होता है अथवा आदर भाव कम हो जाता है। प्रयाग में रहने वाले लोग परम पावनी त्रिवेणी में स्नान न करके कूप के जल से ही स्नान करते हैं। कितना सुन्दर दृष्टान्त है। जो वस्तु जितनी दुर्लभ होती है। उसमें आकर्षण की तीव्रता अधिक होती है और जो वस्तु सुलभ होती है उसमें आकर्षण या आदरभाव उसी अनुपात से कम हो जाता है।

इनकी कविता की भाषा इतनी अधिक सरल, सरस, प्रांजल तथा प्रवाहमयी है कि उसे पढ़ते ही हृदय आनन्द विभार हो उठता है। आज महाकवि विलहण इस विनश्वर विश्व में नहीं है। फिर भी जब तक उनकी सुन्दर, काव्य कृतियाँ विद्यमान हैं। तब तक कृतज्ञ भारतवासी और संस्कृत-कविता-प्रेमी जगत् सदा उन्हें अपनी स्नेहमयी श्रद्धांजलि अर्पित करता रहेगा।

अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण महासभा (रजि०) दिल्ली

१०४ ए, कमला नगर, दिल्ली-6

१: उत्तरी दिल्ली क्षेत्रीय ब्राह्मण सम्मेलन के प्रबन्धक के लिए दूसरी विशेष बैठक

यह बैठक ३०-४-६७ रविवार प्रातः १० बजे कृष्ण मन्दिर डी-१३ कमला नगर में महासभा के प्रधान श्री सोमनाथ तेजपाल की अध्यक्षता में हुई। इस क्षेत्र की बहुत सी बस्तियों के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि उपस्थित थे। परस्पर विचार विमर्श के पश्चात निश्चय हुआ कि :—

१. क्षेत्रीय सम्मेलन २१ मई को करने में ठीक रूप से प्रचार नहीं हो सकेगा। इसलिये पहले प्रचार द्वारा सारे विप्रबन्धुओं तक संदेश पहुँचाया जाए, फिर तिथि का निश्चय किया जाए।

२ काम को सुचारू रूप से चलाने के लिए इन बन्धुओं को चुना गया —

स्वागत अध्यक्ष – श्री पं० दरयाव प्रसाइ शर्मा।
मुख्य मन्त्री — श्री पं० चक्रधर शर्मा।
मन्त्री — श्री प प्रेमनाथ शर्मा।
प्रचार मन्त्री — श्री पं यशोधनन्द शास्त्री।
,, श्री पं० हरीलाल शर्मा।
,, श्री पं० मुखतियार सिंह।

२. बालक-बालिकाओं की प्रतियोगिता

भगवान परशुराम की जयन्ती के अवसर पर पहले, दूसरे नम्बर पर आने वाले ब्राह्मण बालक, बालिकाओं को पारितोषिक देने के लिए ७-५-६७ को प्रातः ९ बजे निवास स्थान श्री पं० किशोर चन्द जी भारद्वाज जैड १ राजौरी गार्डन में बच्चों का इन विषयों में मुकाबला हुआ—

१. भगवान श्री परशुराम के जीवन पर पाँच मिनट भाषण।

२. भगवान परशुराम स्त्रोत या कवच पढ़ना।

३. भगवान परशुराम के जीवन पर भजन अथवा कविता।

४. गायत्री मंत्र का शुद्ध उच्चारण करना।

५. किसी वेद मंत्र का शुद्ध उच्चारण करना।

श्री पं० अर्जुनदेव जी शास्त्री तथा श्री पं० बसंत देव जी शास्त्री मध्यस्थ थे। आपने प्रतियोगिता में भाग लेने वाले बालक तथा बालिकाओं को सुनकर यह निर्णय दिया—

(क) व्याख्यान

प्रथम — श्री ललित कुमार
द्वितीय – श्री कृष्णलाल

(ख) गायत्री मन्त्र

प्रथम – श्री महेन्द्र प्रसाद
द्वितीय — श्री सुरेन्द्र पाल

(ग) श्लोक

प्रथम – कुमारी सविता
द्वितीय श्री कृष्ण लाल

(घ) गीता के श्लोक

प्रथम — कुमारी लता
द्वितीय — कुमारी अंजु।

३ भगवान श्री परशुराम जयन्ती महोत्सव

यह उत्सव १४-५-६७ रविवार को पाँच बजे सायं से ८ बजे सायं तक बड़े समारोह के साथ "सलवान गर्ल्ज हा० सै० स्कूल राजेन्द्र नगर के हाल में जातिरत्न श्री पं० भवानी शकर भार्गव एडवोकेट सुप्रीमकोर्ट की अध्यक्षता में मनाया गया। दिल्ली के प्रत्येक भाग से ब्राह्मण नर-नारी तथा बच्चे भारी संख्या में सम्मिलित हुए। भगवान परशुराम के दो सुन्दर चित्र जिन पर फूल मालायें थीं एक मेज पर रखे बड़े शोभा दे रहे थे। कार्यक्रम इतना रुचिकर था कि उपस्थित बन्धु सारा समय बैठे रहे। बड़े-बड़े विद्वान महानुभावों के भजन और भगवान श्री परशुराम के जीवन पर भाषण हुए। कवितायें पढ़ी गईं। कुमारी मधु शर्मा का भाषण और राजीव शर्मा का लक्ष्मण, परशुराम सम्वाद सुनकर जनता बहुत प्रसन्न हुई। पारितोषिक वितरण का काम श्रीमती शिवदत्त सलवान ने किया। प्रधान महोदय के भाषण और धन्यवाद के पश्चात प्रसाद बांटा गया।

४. महासभा का विस्तार व प्रसार

महासभा का कार्य क्षेत्र दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इसके सदस्यों की संख्या में वृद्धि हो रही है विप्रबन्धु काम की प्रशंसा करते हैं। हर्ष की बात यह है कि मासिक "वशिष्ट" की ग्राहकता भी बढ़ रही है और लोग इसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। इस के प्रमाण में इस मास में बने विशेष ग्राहकों के नाम लिख देना ही काफी है।

१. श्री प० भगवानदास वैद्य, पटेल फार्मेसी।
२ श्री डा० पन्नालाल, बारह ट्रटी।
३. श्री पं० हवेलीराम शर्मा, रमेश नगर।
४. श्री प० सोमदत्त शर्मा मारंडा, कांगडा।
५. श्री पं० गुरुदास राम शर्मा, लड्डू घाटी।
६. श्री पं० सेवा नाथ पाठक, देशबन्धु गुप्ता रोड

कुछ पत्रों तथा विप्रबन्धुओं के विचारों का सारांश।

भोगल (दिल्ली)

'वशिष्ट' पत्रिका पढी। अत्यन्त प्रभावित हुआ। धन्यवाद ? रामगोपाल तिवारी १५-५-६७

मालवीय नगर

मासिक वशिष्ट पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आप जैसे कौमी के हितचिन्तक भाइयों से हमारी आशाएँ पूरी होंगी। ज्ञान चन्द भारद्वाज
१६-५-६७

पटियाला (पंजाब)

उत्तर में आपने अनेक लड़के बताये हैं। धन्यवाद। वह एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर हैं।
मठानी सच्चिदानन्द शास्त्री
११-५-६७

पानीपत (हरियाना)

हमें बड़ी ही हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि आप जैसे कर्मठ, दृढ़ जाति हितेषी, दीर्घदर्शी विद्यमान हैं। अब जाति के उत्थान में देरी न होगी।
जगन्नाथ शास्त्री
११-५-६७

यमुनानगर

'वशिष्ठ' का चन्दा भेजा जाता है। बाकी सदस्यों को भी चन्दा भेजने के लिये प्रेरणा कर रहा हूँ। दीनानाथ शर्मा
११-५-६७

हिसार

यहाँ आप की इस महाँ जाति सेवा की बहुत सराहना की जा रही है। परमात्मा आप को इस शुभ कार्य में सफल करे।
बिशम्बरदास हकीम
१६-५-६७

जालन्धर

'वशिष्ट' पर्चा बहुत अच्छा है। सब ने इसको पसन्द किया है। गोपालदास शैदा

पंजाब प्रान्तीय ब्राह्मण मंडल ६, सात वर्षों से काम कर रहा है और महासभा से सम्मिलित है। इसके साथ पजाब की लगभग सारी ब्राह्मण सभायें सम्मिलित हैं। मनमोहन कृष्ण बग्गा

अम्बाला कैंट

'वशिष्ट' का परशुराम अंक पढ़ा। बड़ा उत्तम पाया। डी० एन० गंगाहर एम० ए०

चंडीगढ़

'वशिष्ट' पढ़ा। बहुत पसन्द किया।
हरि भगवान कपलश

कलकत्ता (बंगाल)

वशिष्ट और नियमावली भेजे। मैं दिल्ली आने पर आप लोगों से मिलूँगा। आचार्य श्रीगोपाल
७-५-६७

देहरादून (यू०पी०)

आप से बात-चीत करने से मुझे बड़ा उत्साह मिला। अब मुझे विश्वास है कि मेरा काम अवश्य हो जाएगा। आपने योग्य लड़के-लड़कियों की जो सूची तैयार की हुई है। इस से विप्र बन्धुओं को बहुत लाभ हो सकता है।
रोशनलाल वैद्य

कानपुर

योग्य लड़के-लड़कियों की सूची और इस सम्बन्ध में आपकी जानकारी देखकर बड़ी खुशी हुई। मेरे जसे दूर रहने वाले भाइयों को इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। बी० आर० शर्मा

खोरई (यू० पी०)

आप से मिलकर और कुछ योग्य वरों की जानकारी प्राप्त करके बड़ी प्रसन्नता हुई। ईश्वर आपको इस शुभ तथा अति आवश्यक कार्य में सफलता द। अमार चन्द शर्मा

पटना (उड़ीसा)

दिल्ली में एक मित्र से महासभा के काम की जानकारी से आपको मिलने की प्रेरणा मिली। आपके विचार जानकर बड़ी खुशी हुई।
रामगोपाल शर्मा

बड़ोत

'वशिष्ट' पढ़कर ज्ञात हुआ कि आपके पास ५०० योग्य लड़क-लड़कियों की सूची है।
देव कुमार गौड़

५. हर्ष की बात

बड़े हर्ष की बात है कि महासभा के सदस्यों में परस्पर रिश्ते-नाते होने से आपसी सम्बन्ध दिन प्रति दिन सुदृढ़ होते जाते हैं। पिछले दो तीन मासों में महासभा के सदस्यों के लड़के-लड़कियों के परस्पर रिश्ते तथा विवाह विशेष रूप से अधिक हुए हैं।

६ महासभा का सहायता कोष

आप यह जानकर बड़े प्रसन्न होंगे कि महासभा के सहायता कोष में विप्रबन्धु सहायता देने में रुचि ले रहे हैं।

श्री पं० जियालाल जी फर्म जियालाल राम कुमार मोतियाखां ने योग्य, गरीब विद्यार्थियों के लिए १०० रु० की पुस्तकें लेकर देने का वचन दिया है। श्री पं० प्रेम सरवरिया जी प्रेम कैमिकल्स खारी बावली ने १० रु० तथा श्री पं० नारायण प्रकाश बख्शी अर्जुन नगर ने ५ रु० मासिक देने को कहा है।

मैं इन भाइयों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अन्य विप्र बन्धु भी अपनी शुभ कमाई में से मासिक अथवा एक बार सहायता कोष में कुछ न कुछ धन भेजने की कृपा करेंगे।
दौलतराम गंगाहर
प्रधान मन्त्री

Religious Teachings Vis—a—Vis Modren Education

K. K. DEVGAN

SINCE indepenpence we have forgotten the post glory of our motherland and have scumbbed to the westeren way of life and thinking. Even in the sphere of edu cation, westeren thinking Vis more than usual. It is pitty that sail of books, which are being taught in India are either published in foreign countries or written by foreign writers. The impactness of Lord Mecaulay's education has not yet been over. I doubt there are certain visted interests who are still working to see that the old glory may not be thrownd again in India and they have impaired the very system of Indian Education.

The so called modren education has shown its results, whi h are evident e.g. disrespect to elders, Materialistic Nations, Adulteration, Strikes and damaging of National wealth, disrespect to country and to its leaders, family trends and strained family relations, disrespect to teachers by the pupils and teachers nations of commercialisation of teaching etc etc. We are becoming more Materialistic without anything in our store. We are more or less becoming mental slaves for some benefits of our own.

Perhaps we have been forced to believe that we are nothing but idiots and they are only the wise people.

"This is the ancient land where wisdom made its home betore it went into any other country, the same India whose influx of spirituality is represented, as it were on the material plane, by rolling rivers, like oceans, where the eteral Himalayas, rising tier above tier with their snow-caped, look as it were into the very mysteries of heaven, He is the same India whose soil has been trodden by the feet of the greatest sages that ever lived. Here first arose the doctrines of the immortality of the soul,the existence of the supervising good, an imminent God in Nature and in Man. and heae the ideals of religion and philosiphy have attained their culminating points' It is the same India which has withstood the shocks of centuries. of hu: ndred of foreign invasions.of hundreds of upheavals of manners customs, It is the same land which stands more firm than any rock in the world. with the undying vigour. indestrucltible life' Its life is of the same nature as the soul. without beginning and without end, immortal, and we are the chidren of such country.

The harm which the foreigner could not do to our heritage, our own people and that too within 20 years of our own rule, when we have our own says. We can no longer afford abandon our own culture, our own way of life and thinking· Since the departure from the religious teachings, we have encountered many problems which neither the Government can solve nor any oitside agency, These are the problems to be solved within ourselves. The only solution is. that along with modern education, religious education be imparted, enabling the students to know themselves and their ancestors. Many evils and problems can be solved by simply religious sermons, where the law has shown their in ability to interfere. Even the religion is most unifying factor in the country like India. Surely it needs judicious handling. In India we have seen how race, difficulties, linguistic difficulties, social difficulties, National Difficulties, all melted away before this unifying power of religion. We khow that to the Indian mind, there is nothing higher than religious ideals, that this is the Key-note of the Indian life. It is not only true, that the ideal of religion is the highest ideal in the case of India it is the only possible means of work, by which we can bring back the old glory. This is the first step, and therefore, it has to be taken.

Some people are of the opinion that India being a secular country has no room for religious education. To them my answer is that they should see the U.S.A., U.K. and other countrees, where religious education is still taught.

"It will not do to say that sinful people cannot be allowed to enter temples. Temples are like spritual hospitals, and the sinful, who are spiritually diseased, have the first right to be ministered into them. Temples are fore the sinners, not for the saint".

"GANDHI JI"

"Today we are divided, dispersed and disintegreted because we have not let our mind assert it self to attain peace and tranquility".

"DR. RADHAKRISHNAN"

Nothing can hurt your real manhood for that is a flame of fire. The animal, that is the flesh, feels the below and whines.

From Mukladhara written by

(RABINDER NATH TAGOTE)

CHILDREN LEARN WHAT THEY LIVE

If a child lives with criticism he learns to condemn......
If a child lives with hostility he learns to fight......
If a child lives with fear he learns to be apprehensive.......
If a child lives with pity he learns to feel sorry for himself......
If a child lives with ridicule he learns to be shy......
If a child lives with shame he learns to feel guilty......
If a child lives with encouragement he learns to be confident......
If a child lives with tolerance he learns to be patient......
If a child lives with praise he learns to be appreciative......
If a child lives with acceptance he learns to love......
If a child lives with approval hd learns to like himself......
If a child lives with recognition he learns that it is a good to have a goal......
If a child lives with sharing he learns about generosity......
If a child lives with honesty and fairness he learns what truth and justice are......
If a child lives with security he learns to have faith in himself
and in those about him......
If a child lives in friendliness he learns that the world is a
nice place in which to live......
If you live with serenity your child will live with peace of mind......

COURTESY 'EDUCATIONAL & CAREER YEAR BOOK'

by S. D. DEV.

THE ARYA SAMAJ

[By S. M. GAUTAMA]

"I BELIEVE in the same Vedic Scriptures and the same three Eternal entities, viz: Ishwara, Jiva and Prakriti which are accepted by all the Rishis from Brahma down to Jaimini. My faith is the same which finds no alteration whether in the present, past or future. I have not the least desire to found any new sect or creed; I simply preach what is true and renounce what is false," writes Swami Dayananda the founder of Aryasamaj in his famous book "Satyartha Prakasha."

Coming from an aristocratic Brahmin family, Swamiji bearing the birth name of Mool Shanker displayed a keen interst in religion. At the age of 14 on the night of Shivratri, when he was sitting alone in the temple of Lord Shiva, which was built by his father Karsanji Tiwari, a small incident happened which chaged the whole course of his life.

Sitting there he repeatedly asked himself the question' Is this the mighty Shiva — the Lord of Destruction ? If so why can't He drive away these mischehevious mice who are taking undue liberties with His Lingum ? He was perplexed at the brief explanation from his father. His earnest was not quenched and he did not enter the temple again.

Another diverting incident was the death of Swamiji's sister, when he was 18 years of age. The little sister with whom he had often played and to whom he had confided many a future schemas was now dead. This set him thinking and, eyes half closed, he fell into a state of reverie, trying to solve the old, old problem of death but in vain. Thus frustrated, one night, he left his home never never to return.

He roamed and wandered down India from one corner of the counery to other, meeting the various 'Sadhus' and various 'varaigis'. He started practising Yoga, read many a scriptures and then took up Sanyasa whereupon he adopted the name of Swami Dayananda. On April 2, 1858 he met Virajananda, at Mathura, from whom he acquired knowledge of Vedas and it was here that the real foundation of the Arya Samaj was laid

The Arya Samaj stands on the oldest yet the strongest rock of Vedas. It preaches truths of all times. Among the ten principles of Arya Samaj, the fourth reads 'One should

be ever ready to accept truth and reject falsehould." It makes no distinction beetween the highborn and low and admits one and all to its fold.

According to the Arya Samaj, a Brahmin is not he who is simply born of Brahmin parents and does nothing of Brahminic duty. Even as Manhabharata says "Even though born of a low caste, I take a man doing noble deeds for a Brahmin.

"For it is the 'Vritta' (Charactor) that makes a man and not Janam (birth). Manu defines Brahmins as 'one who reads, Vedas and makes others read; one who performs Yajna makes others perform; and one who receives alms and gives to others'' for he continues "By birth vll are 'Shudras' and by 'Snaskara' (culture) they become 'Dwijas' (which born).''

Thus the Arya Samaj gives equal opportunities to the people of all castes to reach the top if they can. Competition is one of the basic principles of evolution and survival of the fittest' is the result.

CHANGED VIEWS—The bedrock of the Aryan religion is Veda but what Veda is, very few Hindus know. Owing to this Swami Dayananda ordered four 'Swahitas' (original texts), from Germany and after receiving them compared the taxt with the available copy in India and then published the four Vedas for the first time in his Vedic press at Ajmeer.

Since then Millions of copies have been printed and sold. A book called "Redvadade — Bhashya Bhumica, or introduction to the Commentary of Vedas" by Swami Dayananda has been highly spoken of both ey Eastern and Western Scholars.

What is the mission of Arya Samaj ? It has changed the view point of every religionist. Not only Hindus but also those of other religions have to seek reasonable interparettions for their respective scriptures. Swamiji constantly harped upon the notes of reason and truth and said that which is not supported by arguments is not true.

As manu says "He who tests his faith on the touchstone of reason knows Dharma and no other.

FORMS FAITH—Arya Samaj is not a new religion and the same old vedas. Upanishads and Darshanas and Varnashrana system forms faith Swami Dayananda like Confucius had said. "I only hand on; I cannot create new things — I believe in the ancients and therefore love them."

The only new things is that Arya Samaj does not give undeserved honour to the priestly class, though nevertheless, it says let people of all castes, whether Brahmins or not, try their best to aquire the stage and position to which they aspire.

And their caste shall be decided not by their birth but by their personal merits and aptitudes.

PATRIOTISM & TRUTH

S. D. DEV

Thomas Jefferson once said 'The Tree of liberty must be refreshed from time to time with the blood of patriots and tyrants. It is its natural manure'.

Patriotism is a noble sentiment, a frame of mind and a national virtue. According to Byron 'He who loves not his sentiments in the following; words :—

Breathes there the man with soul so dead.

Who never to himself hath said.

This is my own my native land ?

In nutshell tue patriotism means a deep love for the country in which we are born. True love means sacrifice without any selfish motive or any reward what-so-ever. A true p triot must try to improve the economic, moral, social and national life of the people. In short a true patriot lives for others and dies for others.

A true patriot love the whole of man kind irrespective of caste, colour and creed and is ever ready to sacrifice for the protection of is motherland and also takes pride in taking interest in the welfare of his country. A true patriot is symbol of high moral, charector and spirtualism. He is also not narrow-minded and intolerant. Though he feels proud in his country's greatness, still he is not blind to the greatness of other contries or the faith other than that he himself profess.

Above all, a true patriot must always speak and practice truth. Strange as it may seem the age of truth is also the age of pleasure. 'Truth is God' is acclaimed by people from all walks of life and faith.

India's ancient sages laid dowh that in certain conditions the good man could depart from truth, which included self-preservation, and in defence of the Brahmin and the cow. In no other circumstances one was allowed to deviate from truth.

It is pity that in one aspect of contemporary life the truth is not the habit. In politics the truth emerges only considerably after events. Joan of Arc was canonized three centuries after she was burnt. Stalin's nature can be revealed only in a secret session and only years after his death Mr. Anthory Nutting has to wait for more then ten years before he can speack out the truth about Suez. The Zinoviev letter whose publication cost Ramsay Macdonald the election is proved a forgery paid for by the Conservative Central Office of the day, just

this year. There are 25 years to go before we can read the unexpurgated text of Maulana Abul Kalam Azad's memoirs. After 50 years Barbara Tuchman reveals that the first world war did not come about as the result of the Kaiser's wickeness. After thirty years Mr. A.J.P. Taylors discovers that it was not Hitler who started the second world war.

Let me conclude with the remarks that if our action is combined with perception, faith which is essential for progress comes of itself and for this one has always to depend on truth, which is ultimately a key to success.

In the words of Late Shri Jawaharlal Nehru 'Truth is not confined to one country or people; it has far too many aspects for anyone to presume that he knows all. And each country and each people, if they are true to themselves, have to find out their paths themselve, through trial aud error, through suffiering experience'.

Truth prevails in the long run and those who try to suppress truth, thesr success if at all they achieve is meaningless and ultimetly harm them when the actual truth is revealed.

HOPE FOR THE BEST
BUT PREPARE FOR THE WORST.

Edited & Published by Som Nath Tejpal 104-A, Kamla Nagar, Delhi, Manager of "Vashishat" masik and Printed at [illegible] Delhi Phone 265762